डॉ. प्रकाशचंद्र गंगराडे

हिन्दुओं के रीति-रिवाज तथा मान्यताएं

धार्मिक एवं पौराणिक प्रमाणों सहित

यज्ञ में आहुति क्यों...सूर्य व चंद्र को अर्घ्य क्यों...अग्नि के समक्ष फेरे क्यों...
मांग में सिंदूर क्यों...माथे पर तिलक क्यों...मृतक का श्राद्ध क्यों...

... ऐसी सैकड़ों मान्यताएं

पुस्तक महल®

हिन्दू मानस में रची-बसी सैकड़ों मान्यताओं एवं संस्कारों में से चुनी हुई सर्वाधिक प्रचलित 133 मान्यताओं का विवरण।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। *–ऋग्वेद 1/12/19*

अर्थात् किसी धर्मिक ग्रंथ या वेद मंत्रों को तोते की भांति रटने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। हमें नियमों को अपने जीवन में धारण करना चाहिए।

सदा से ही हिन्दू धर्म में फैले कर्मकांडों और आडंबरों से ओत-प्रोत मान्यताओं और संस्कारों के सत्त्व तथा वास्तविकताओं की पड़ताल पहली बार प्रश्नोत्तर शैली में। आस्थावादी वैज्ञानिक दृष्टि के साथ।

करोड़ों जिज्ञासुओं के लिए धर्म-ग्रंथों के हज़ारों-हज़ार पृष्ठों में बिखरे प्रसंगों, माहात्म्यों, मिथकों व तथ्यों की महत्त्वपूर्ण प्रस्तुतियां।

Scan 181-183

Scan - कागज की लगे पूरे चेप्टर

हिन्दुओं के रीति-रिवाज तथा मान्यताएं

धार्मिक एवं पौराणिक प्रमाणों सहित

डॉ. प्रकाशचंद्र गंगराड़े

पुस्तक महल®

दिल्ली • मुंबइ • बंगलोर • पटना • हैदराबाद

प्रकाशक
पुस्तक महल®, दिल्ली-110006

विक्रय केन्द्र
- 6686, खारी बावली, दिल्ली-110006, फोन: 23944314, 23911979
- 10-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
  फोन: 23268292, 23268293, 23279900 • फैक्स: 011-23280567
  E-mail: rapidexdelhi@indiatimes.com

प्रशासनिक कार्यालय
J-3/16 (हैप्पी स्कूल के सामने), दरियागंज, नई दिल्ली-110002
फोन: 23276539, 23272783, 23272784 • फैक्स: 011-23260518
E-mail: info@pustakmahal.com • *Website:* www.pustakmahal.com

शाखा कार्यालय
बंगलोर : 22/2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउंड), बंगलोर-560027
फोन: 2234025 • फैक्स: 080-2240209
E-mail: pustak@sancharnet.in • pmblr@sancharnet.in

मुंबई : 23-25, जाओबा वाडी (वी.आई.पी. शोरूम के सामने), ठाकुरद्वार, मुंबई-400002
फोन: 22010941 • फैक्स: 022-22053387
E-mail: rapidex@bom5.vsnl.net.in

पटना : खेमका हाउस, पहली मंजिल (वूमेन्स हॉस्पिटल के सामने),
अशोक राजपथ, पटना-800004 • टेलीफैक्स: 0612-2673644
E-mail: rapidexptn@rediffmail.com

हैदराबाद : 5-1-707/1, ब्रिज भवन, बैंक स्ट्रीट, कोटी, हैदराबाद-500095
फोन: 24737530 • फैक्स: 24737290
E-mail: pustakmahalhyd@yahoo.co.in

©कॉपीराइट सर्वाधिकार
पुस्तक महल, 6686, खारी बावली, दिल्ली-110006

ISBN 81-223-0836-8

चेतावनी

भारतीय कॉपीराइट एक्ट के अंतर्गत इस पुस्तक के तथा इसमें समाहित सारी सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार **"पुस्तक महल"** के पास सुरक्षित हैं। इसलिए कोई भी सज्जन इस पुस्तक का नाम, टाइटल डिजाइन, अंदर का मैटर व चित्र आदि आंशिक या पूर्णरूप से तोड़-मरोड़ कर एवं किसी भी भाषा में छापने व प्रकाशित करने का साहस न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर वे हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे। **–प्रकाशक**

संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण : फरवरी, 2004

मुद्रक : परम ऑफसेटर्स, ओखला, नई दिल्ली-110020

स्वकथन

इसमें कोई दो मत नहीं कि आदिकाल से हमारे देश के ऋषि-मुनियों एवं मनीषियों ने लोगों में धर्म के प्रति आस्था जगाने के सतत प्रयास किए हैं। उन्होंने धर्म के तत्व, महत्त्व तथा जीवन पर उसके प्रभावों का मूल्य समझा और बताया कि धर्म के सहारे सफल जीवन यापन किया जा सकता है। धर्म को 'जीवन का अनुशासन' कहना अनुचित न होगा, क्योंकि इसका पालन कर मनुष्य स्वयं का हित करते हुए सारी मानव जाति का भी हित करता है।

'धार्यते जनैरिति धर्मः' अर्थात् ऐसा आचरण, जिसे धारण करना या अपनाना हितकर हो, वही धर्म कहलाता है और धर्म को धारण करने वाला, धर्म का अपने जीवन में आचरण करने वाला, धर्म के आधार पर अपने जीवन को जीने वाला व्यक्ति धार्मिक कहलाता है। धर्म व्यक्ति को जहां कर्तव्योन्मुख बनाता है, श्रेष्ठ मार्ग पर चलाता है, वहीं संवेदना जगाकर उसके अंदर देवत्व भी जगाता है। मनुष्य और पशु या मानव और दानव में अंतर पैदा करता है। कहा जाता है कि धर्मविहीन मनुष्य पशु के समान होता है।

यूं तो हिन्दू धर्म वैज्ञानिक धर्म है। श्रेष्ठ संस्कारवान मानव का निर्माण करना भारतीय संस्कृति का मूलभूत उद्देश्य है। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने मानव सभ्यता को सुसंस्कृत करने के लिए धर्म की पृष्ठभूमि पर कुछ नियम-सिद्धांत बनाए, जिनमें शिशु के गर्भ में आते ही आत्मा पर छाई मलिनता को हटा कर उस पर नए संस्कारों को आरोपित करने की व्यवस्था बनाई। इसका उद्देश्य मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन को साकार करना और धार्मिकता के भावों की वृद्धि करना है। संस्कारों का प्रयोग ठीक उसी प्रकार किया जाता है, जैसे किसी औषधि को अनेक पुट और भावनाएं देकर अमृतौषधि में बदल दिया जाता है। इस प्रकार गर्भ में आने से लेकर शरीर छोड़कर चिता में समर्पण तक तथा उसके बाद भी जीवात्मा को संभालने-संवारने के विधान हमारे धर्म-शास्त्रों में किए गए, क्योंकि आत्मा अमर मानी गई है।

जो व्यक्ति अपने जीवन में आनंद, उल्लास, उन्नति, समृद्धि, पुण्यों का अर्जन, स्वर्ग में स्थान और अगले जन्म में श्रेष्ठ योनि पाना चाहता है, वह जीवन-भर धार्मिक मान्यताओं से जुड़ा रहता है। आत्मिक शांति और संतोष की प्राप्ति के लिए इन मान्यताओं का अनुसरण भी करता है। धार्मिक मान्यताएं न तो अवैज्ञानिक हैं न ही काल्पनिक हैं। किसी वस्तु के लाभ, महत्त्व और रहस्य को जाने बिना उस पर श्रद्धा, आस्था और प्रीति न होना स्वाभाविक है। चूंकि धर्म का आधार विश्वास

और श्रद्धा पर ही टिका है तथा उसकी प्रवृत्ति हृदय से होती है, ऐसे में अविश्वास, संदेह और भय रहने पर किसी वस्तु से पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता। ठीक उसी प्रकार हिन्दू कर्मकांडों के प्रति फैली हुई भ्रांतियों को दूर करने और उनके प्रति श्रद्धा का भाव जगाने के लिए बड़ी सरस एवं सरल प्रश्नोत्तर शैली में इस पुस्तक की रचना की गई है, जिसमें हिन्दू मान्यताओं के संबंध में वैज्ञानिक और आधुनिक दृष्टिकोण से युक्त जानकारी पौराणिक कथा-प्रसंगों एवं शास्त्र माहात्म्य के साथ दी गई है। इससे न केवल विचारने के लिए नया दृष्टिकोण मिलेगा, बल्कि धर्म संबंधी जिज्ञासाओं का किसी हद तक समाधान भी होगा।

मेरी अभिलाषा है कि भारतीय जनता धर्म के कर्मकांडों के महत्त्व, रहस्य को समझे और उसे अपने जीवन में आत्मसात कर अपना लोक-परलोक सुधारे।

अंत में इस पुस्तक को लिखने के लिए मैंने जिन अनेक समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और धार्मिक ग्रंथों से संदर्भ सामग्री उद्धृत की है, उन सभी के रचयिताओं और प्रकाशकों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूं।

–डॉ. प्रकाशचन्द्र गंगराड़े
भोपाल (म.प्र.)

अंदर के पृष्ठों में

1. सर्वप्रथम गणेश का ही पूजन क्यों? 11
2. गणेशजी को दूर्वा और मोदक चढ़ाने का महत्त्व क्यों? 13
3. पारद शिवलिंग और शालग्राम पूजन का विशेष महत्त्व क्यों? 15
4. हनुमानजी को सिंदूर चढ़ाने की परंपरा क्यों? 17
5. अनिष्ट निवारण के लिए महामृत्युंजय मंत्र को विशेष महत्त्व क्यों? 18
6. ग्रहणकाल में भोजन करना वर्जित क्यों? 20
7. गंगा विशेष पवित्र नदी क्यों? 21
8. मनुष्य जीवन दुर्लभ क्यों? 23
9. धर्म की आवश्यकता क्यों? 24
10. हिंदू धर्म में संस्कारों का महत्त्व क्यों? 26
11. गर्भाधान संस्कार क्यों? 28
12. पुंसवन संस्कार क्यों? 30
13. सीमंतोन्नयन संस्कार क्यों? 32
14. नामकरण संस्कार क्यों? 33
15. निष्क्रमण संस्कार क्यों? 35
16. अन्नप्राशन संस्कार क्यों? 36
17. चूड़ाकर्म (मुंडन) संस्कार क्यों? 38
18. शिखा (चोटी) रखने और उसमें गांठ बांधने की प्रथा क्यों? 40
19. कर्णवेध संस्कार क्यों? 42
20. विद्यारंभ संस्कार का महत्त्व क्यों? 43
21. सरस्वती को ही ज्ञान की देवी क्यों माना जाता है? 45
22. गुरु का महत्त्व क्यों? 47
23. गुरु दीक्षा का विशेष महत्त्व क्यों? 49
24. गुरु दक्षिणा की परंपरा क्यों? 51
25. यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार क्यों? 53
26. यज्ञोपवीत में तीन लड़, नौ तार और 96 चौवे ही क्यों? 54
27. शौच के समय जनेऊ कान पर लपेटना जरूरी क्यों? 55
28. समावर्तन (उपदेश) संस्कार क्यों? 57

29. विवाह एक पवित्र संस्कार क्यों? 58
30. विवाह में गठबंधन का विधान क्यों? 59
31. विवाह में सात फेरे अग्नि के समक्ष ही क्यों? 60
32. भांवरों के बाद सप्तपदी की रस्म क्यों? 61
33. विवाह में वर-वधू कौन-सी प्रतिज्ञाएं लेते हैं और क्यों? 62
34. मांग में सिंदूर भरना सुहाग की निशानी क्यों? 64
35. शास्त्रों में सगोत्र विवाह करना वर्जित क्यों? 65
36. पत्नी को वाम अंग बैठाने की प्रथा क्यों? 66
37. वानप्रस्थ संस्कार क्यों? 68
38. संन्यास आश्रम की व्यवस्था क्यों? 69
39. अंत्येष्टि संस्कार क्यों? 71
40. फूल (अस्थियों) का गंगा आदि पवित्र नदियों में विसर्जन क्यों? 73
41. मृतक का तर्पण क्यों किया जाता है? 75
42. पिंडदान करने की परंपरा क्यों? 76
43. पूर्वजों का श्राद्ध कर्म करना आवश्यक क्यों? 78
44. पिंडदान, श्राद्ध आदि कर्म पुत्र द्वारा ही क्यों? 80
45. सबसे बड़ा दान क्या है? 81
46. आत्मा को अमर माना जाता है क्यों? 82
47. पुनर्जन्म की मान्यता में विश्वास क्यों? 83
48. ब्रह्म मुहूर्त में उठने के निर्देश क्यों? 85
49. नित्य पूजा की आवश्यकता क्यों? 87
50. शुभ कार्यों में पूर्व दिशा में ही मुख क्यों? 89
51. धार्मिक कर्मकांड में आसन पर बैठना आवश्यक क्यों? 90
52. धार्मिक कर्मकांडों में पुष्प का महत्त्व क्यों? 91
53. पूजा-पाठ हेतु सोने-चांदी के पात्र श्रेष्ठ क्यों? 93
54. पूजा से पहले स्नान आवश्यक क्यों? 95
55. यजमान व पूजा सामग्री पर जल के छींटे क्यों? 97
56. पूजा-पाठ में दीपक जलाना अनिवार्य क्यों? 99
57. नारियल शुभ, समृद्धि और सम्मान का प्रतीक क्यों? 100
58. धार्मिक कर्म में मौलि या कलावा बांधने की प्रथा क्यों? 101
59. पूजा-पाठ और कर्मकांडों में संकल्प अनिवार्य क्यों? 102
60. देव मूर्ति की परिक्रमा का महत्त्व क्यों? 103
61. भगवान के चरणामृत सेवन का महत्त्व क्यों? 105
62. आचमन तीन बार ही क्यों? 107
63. धार्मिक कर्म में कुश का महत्त्व क्यों? 108

64. शुभ कार्यों में नवग्रहों का पूजन क्यों? 109
65. सूर्य की उपासना में जल (अर्घ्य) क्यों दिया जाता है? 111
66. करवा चौथ के दिन चंद्रमा की पूजा क्यों? 113
67. सत्संग और कथा प्रवचन सुनने का महत्त्व क्यों? 115
68. वृक्षों की पूजा-उपासना क्यों? 117
69. तुलसी का विशेष महत्त्व क्यों? 119
70. पीपल का पूजन क्यों? 121
71. अनेक देवी-देवताओं की मान्यता क्यों? 123
72. मूर्ति पूजा की सार्थकता क्यों? 125
73. मकान की नींव में सर्प और कलश क्यों गाड़ा जाता है? 126
74. तिलक लगाने का प्रचलन क्यों? 127
75. धार्मिक कार्यों में शंख बजाने की परंपरा क्यों? 129
76. नित्य अग्निहोत्र का विधान क्यों? 131
77. यज्ञ में आहुति के साथ स्वाहा बोलने की परंपरा क्यों? 132
78. पंचमहायज्ञ क्यों? 134
79. यज्ञ में पशुबलि अनुचित क्यों? 136
80. यज्ञ में मंत्रों का ऊंचे स्वर में उच्चारण क्यों? 137
81. पूजा में यंत्रों का महत्त्व क्यों? 138
82. श्रीयंत्र की पूजा का विशेष महत्त्व क्यों? 140
83. मंत्रों की शक्ति में विश्वास क्यों? 141
84. गायत्री मंत्र की सबसे अधिक मान्यता क्यों? 142
85. ब्राह्मण को सर्वाधिक महत्त्व क्यों? 143
86. पूजा कराने और दान-दक्षिणा लेने का अधिकारी ब्राह्मण ही क्यों? 145
87. जाति-पांति का भेद-भाव अनुचित क्यों? 147
88. सत्यनारायण की कथा का महत्त्व क्यों? 148
89. माला में 108 दाने ही क्यों? 150
90. रुद्राक्ष और तुलसी की माला धारण करना लाभदायक क्यों? 152
91. स्वस्तिक कल्याण का प्रतीक क्यों? 154
92. ओउम् (ॐ) का शास्त्रों में अधिक महत्त्व क्यों? 156
93. कलश मांगलिकता का प्रतीक क्यों? 158
94. मंदिर का निर्माण क्यों? 160
95. मंदिरों में घंटा और घड़ियाल बजाने का महत्त्व क्यों? 162
96. पूजा में कमल-पुष्प का विशेष महत्त्व क्यों? 163
97. चरण स्पर्श, साष्टांग प्रणाम की परंपरा क्यों? 164
98. छोछक और भात देने की परंपरा क्यों? 166

99. गौ सेवा का धार्मिक महत्त्व क्यों? 168
100. सुंदरकांड का धार्मिक महत्त्व क्यों? 170
101. कर्म फल की मान्यता क्यों? 172
102. पाप-पुण्य के बुरे और अच्छे फल भुगतने की धारणा क्यों? 173
103. स्वर्ग-नरक की कल्पना का आधार क्या? 175
104. माता-पिता की सेवा सबसे बड़ा धर्म क्यों? 176
105. व्रत-उपवास का महत्त्व क्यों? 178
106. मौन व्रत का विशेष महत्त्व क्यों? 179
107. स्वस्थ जीवन के लिए प्राणायाम आवश्यक क्यों? 180
108. पर्वों और त्योहारों का महत्त्व क्यों? 181
109. दीवाली पर लक्ष्मी पूजन क्यों? 182
110. शुभ कार्यों में मुहूर्त का महत्त्व क्यों? 184
111. शकुन-अपशकुन की मान्यता क्यों? 186
112. बुरी नजर लगने की मान्यता क्यों? 188
113. यमराज का दूसरा नाम धर्मराज क्यों? 190
114. दक्षिणावर्ती शंख चमत्कारी देव वस्तु क्यों? 192
115. भगवान का नाम जपने से मुक्ति की मान्यता क्यों? 194
116. विश्वकर्मा की पूजा क्यों? 196
117. प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में ही कुंभ का मेला क्यों? 197
118. दस अवतारों की अवधारणा क्यों? 198
119. तीर्थों का महत्त्व क्यों? 200
120. चारों धामों की यात्रा का धार्मिक महत्त्व क्यों? 202
121. तीन समय संध्या उपासना करने का विधान क्यों? 204
122. पूजा में प्रयुक्त वस्तुओं का महत्त्व क्यों? 205
123. शनिदेव लंगड़े क्यों और उन पर तेल चढ़ाने की परंपरा क्यों? 207
124. देवताओं के सोने (देवशयन/हरिशयन) की मान्यता क्यों? 209
125. देवताओं के वाहन अलग-अलग पशु-पक्षी क्यों? 210
126. ईश्वर के सर्वव्यापी होने की मान्यता क्यों? 212
127. राम नाम का जप क्यों? 214
128. (भगवान का) भजन-कीर्तन और प्रार्थना क्यों? 215
129. कीर्तन में ताली बजाने के लाभ? 217
130. प्रातः जगते ही हथेलियों के दर्शन क्यों? 218
131. सुबह जगते ही भूमिवंदना क्यों? 219
132. अतिथि को देवता मानने की प्रथा क्यों? 220
133. सुहागिन स्त्री के लिए मंगलसूत्र का महत्त्व क्यों? 222

1. सर्वप्रथम गणेश का ही पूजन क्यों?

हिंदू धर्म में किसी भी शुभ कार्य का आरंभ करने के पूर्व गणेशजी की पूजा करना आवश्यक माना गया है, क्योंकि उन्हें विघ्नहर्ता व ऋद्धि-सिद्धि का स्वामी कहा जाता है। इनके स्मरण, ध्यान, जप, आराधना से कामनाओं की पूर्ति होती है व विघ्नों का विनाश होता है। वे शीघ्र प्रसन्न होने वाले बुद्धि के अधिष्ठाता और साक्षात् प्रणव रूप हैं। प्रत्येक शुभ कार्य के पूर्व 'श्री गणेशाय नमः' का उच्चारण कर उनकी स्तुति में यह मंत्र बोला जाता है–

वक्रतुण्ड महाकाय, सूर्य कोटि समप्रभः।
निर्विघ्नं कुरु मेदेव सर्व कार्येषु सर्वदा॥

गणेशजी विद्या के देवता हैं। साधना में उच्चस्तरीय दूरदर्शिता आ जाए, उचित-अनुचित, कर्तव्य-अकर्तव्य की पहचान हो जाए, इसीलिए सभी शुभ कार्यों में गणेश पूजन का विधान बनाया गया है।

गणेशजी की ही पूजा सबसे पहले क्यों होती है, इसकी पौराणिक कथा इस प्रकार है–

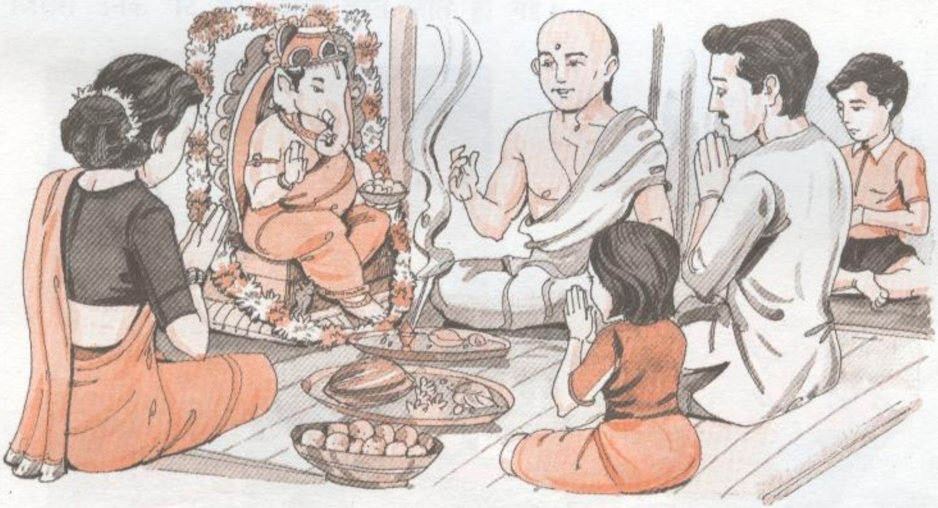

पद्मपुराण के अनुसार–सृष्टि के आरंभ में जब यह प्रश्न उठा कि प्रथम पूज्य किसे माना जाए, तो समस्त देवतागण ब्रह्माजी के पास पहुंचे। ब्रह्माजी ने कहा कि जो कोई संपूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा सबसे पहले कर लेगा, उसे ही प्रथम पूजा जाएगा। इस पर सभी देवतागण अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर परिक्रमा हेतु चल पड़े। चूंकि गणेशजी का वाहन चूहा है और उनका शरीर स्थूल, तो ऐसे में वे परिक्रमा कैसे कर पाते? इस समस्या को सुलझाया देवर्षि नारद ने। नारद ने उन्हें जो उपाय सुझाया, उसके अनुसार गणेशजी ने भूमि पर **'राम'** नाम लिखकर उसकी सात परिक्रमा की और ब्रह्माजी के पास सबसे पहले पहुंच गए। तब ब्रह्माजी ने उन्हें प्रथम पूज्य बताया। क्योंकि 'राम' नाम साक्षात् श्रीराम का स्वरूप है और श्रीराम में ही संपूर्ण ब्रह्मांड निहित है।

शिवपुराण की एक अन्य कथा के अनुसार एक बार समस्त देवता भगवान् शंकर के पास यह समस्या लेकर पहुंचे कि किस देव को उनका मुखिया चुना जाए। भगवान् शिव ने यह प्रस्ताव रखा कि जो भी पहले पृथ्वी की तीन बार परिक्रमा करके कैलास लौटेगा, वही अग्रपूजा के योग्य होगा और उसे ही देवताओं का स्वामी बनाया जाएगा। चूंकि गणेशजी का वाहन चूहा अत्यंत धीमी गति से चलने वाला था, इसलिए अपनी बुद्धि-चातुर्य के कारण उन्होंने अपने पिता शिव और माता पार्वती की ही तीन परिक्रमा पूर्ण की और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। शिव ने प्रसन्न होकर कहा कि तुमसे बढ़कर संसार में अन्य कोई इतना चतुर नहीं है। माता-पिता की तीन परिक्रमा से तीनों लोकों की परिक्रमा का पुण्य तुम्हें मिल गया, जो पृथ्वी की परिक्रमा से भी बड़ा है। इसलिए जो मनुष्य किसी कार्य के शुभारंभ से पहले तुम्हारा पूजन करेगा, उसे कोई बाधा नहीं आएगी। बस, तभी से गणेशजी अग्रपूज्य हो गए।

2. गणेशजी को दूर्वा और मोदक चढ़ाने का महत्त्व क्यों?

भगवान् गणेशजी को 3 या 5 गांठ वाली दूर्वा (एक प्रकार की घास) अर्पण करने से वह प्रसन्न होते हैं और भक्तों को मनोवांछित फल प्रदान करते हैं। इसीलिए उन्हें दूर्वा चढ़ाने का शास्त्रों में महत्त्व बताया गया है। इसके संबंध में पुराण में एक कथा का उल्लेख मिलता है–"एक समय पृथ्वी पर अनलासुर नामक राक्षस ने भयंकर उत्पात मचा रखा था। उसका अत्याचार पृथ्वी के साथ-साथ स्वर्ग और पाताल तक फैलने लगा था। वह भगवद् भक्ति व ईश्वर आराधना करने वाले ऋषि-मुनियों और निर्दोष लोगों को जिंदा निगल जाता था। देवराज इंद्र ने उससे कई बार युद्ध किया, लेकिन उन्हें हमेशा परास्त होना पड़ा। अनलासुर से त्रस्त होकर समस्त देवता भगवान् शिव के पास गए। उन्होंने बताया कि उसे सिर्फ गणेश ही खत्म कर सकते हैं, क्योंकि उनका पेट बड़ा है इसलिए वे उसको पूरा निगल लेंगे। इस पर देवताओं ने गणेश की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। गणेशजी ने अनलासुर का पीछा किया और उसे निगल गए। इससे उनके पेट में काफी जलन होने लगी। अनेक उपाय किए गए, लेकिन ज्वाला शांत न हुई। जब कश्यप ऋषि को यह बात मालूम हुई, तो वे तुरंत कैलास गए और 21 दूर्वा एकत्रित कर एक गांठ तैयार कर गणेश को खिलाई, जिससे उनके पेट की ज्वाला तुरंत शांत हो गई।

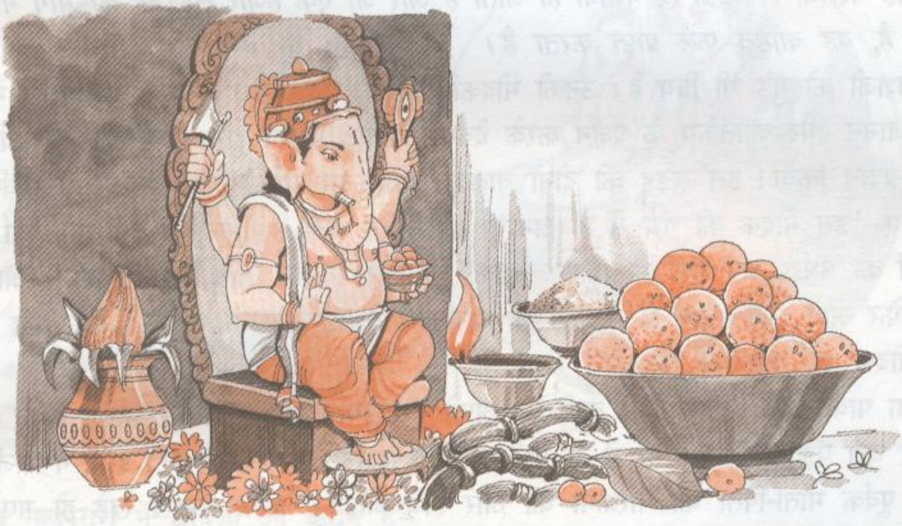

गणेशजी को मोदक यानी लड्डू काफी प्रिय हैं। इनके बिना गणेशजी की पूजा अधूरी ही मानी जाती है। गोस्वामी तुलसीदास ने **विनय पत्रिका** में कहा है–

गाइए गनपति जगबंदन। संकर सुवन भवानी नंदन।
सिद्धि-सदन गज बदन विनायक। कृपा-सिंधु सुंदर सब लायक॥
मोदकप्रिय मुद मंगलदाता। विद्या वारिधि बुद्धि विधाता॥

इसमें भी उनकी मोदकप्रियता प्रदर्शित होती है। महाराष्ट्र के भक्त आमतौर पर गणेशजी को मोदक चढ़ाते हैं। उल्लेखनीय है कि मोदक मैदे के खोल में रखा, चीनी, मावे का मिश्रण कर बनाए जाते हैं। जबकि लड्डू मावे व मोतीचूर के बनाए हुए भी उन्हें पसंद हैं। जो भक्त पूर्ण श्रद्धाभाव से गणेशजी को मोदक या लड्डुओं का भोग लगाते हैं, उन पर वे शीघ्र प्रसन्न होकर इच्छापूर्ति करते हैं।

मोद यानी आनंद और 'क' का शाब्दिक अर्थ छोटा-सा भाग मानकर ही मोदक शब्द बना है, जिसका तात्पर्य हाथ में रखने मात्र से आनंद की अनुभूति होना है। ऐसे प्रसाद को जब गणेशजी को चढ़ाया जाए, तो सुख की अनुभूति होना स्वाभाविक है। एक दूसरी व्याख्या के अनुसार जैसे ज्ञान का प्रतीक मोदक मीठा होता है, वैसे ही ज्ञान का प्रसाद भी मीठा होता है।

गणपति अथर्वशीर्ष में लिखा है–

यो दूर्वाकुरैंर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति।
यो लाजैर्यजति स यशोवान भवति स मेधावान भवति ॥
यो मोदक सहस्रेण यजति स वांछित फलमवाप्राप्नोति ॥

अर्थात् जो भगवान् को दूर्वा चढ़ाता है, वह कुबेर के समान हो जाता है। जो लाजो (धान-लाई) चढ़ाता है, वह यशस्वी हो जाता है, मेधावी हो जाता है और जो एक हजार लड्डुओं का भोग गणेश भगवान् को लगाता है, वह वांछित फल प्राप्त करता है।

गणेशजी को गुड़ भी प्रिय है। उनकी मोदकप्रियता के संबंध में एक कथा **पद्मपुराण** में आती है। एक बार गजानन और कार्तिकेय के दर्शन करके देवगण अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने माता पार्वती को एक दिव्य लड्डू प्रदान किया। इस लड्डू को दोनों बालक आग्रह कर मांगने लगे। तब माता पार्वती ने लड्डू के गुण बताए–"इस मोदक की गंध से ही अमरत्व की प्राप्ति होती है। निस्संदेह इसे सूंघने या खाने वाला संपूर्ण शास्त्रों का मर्मज्ञ, सब तंत्रों में प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान, ज्ञान-विज्ञान विशारद और सर्वज्ञ हो जाता है।" फिर आगे कहा–"तुम दोनों में से जो धर्माचरण के द्वारा अपनी श्रेष्ठता पहले सिद्ध करेगा, वही इस दिव्य मोदक को पाने का अधिकारी होगा।"

माता पार्वती की आज्ञा पाकर कार्तिकेय अपने तीव्रगामी वाहन मयूर पर आरूढ़ होकर त्रिलोक की तीर्थयात्रा पर चल पड़े और मुहूर्त भर में ही सभी तीर्थों के दर्शन, स्नान कर लिए। इधर गणेशजी ने अत्यंत श्रद्धा-भक्ति पूर्वक माता-पिता की परिक्रमा की और हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े हो गए और कहा कि तीर्थ स्थान, देव स्थान के दर्शन, अनुष्ठान व सभी प्रकार के व्रत करने से भी माता-पिता के पूजन के सोलहवें अंश के बराबर पुण्य प्राप्त नहीं होता है, अतः मोदक प्राप्त करने का अधिकारी मैं हूं। गणेशजी का तर्कपूर्ण जवाब सुनकर माता पार्वती ने प्रसन्न होकर गणेशजी को मोदक प्रदान कर दिया और कहा कि माता-पिता की भक्ति के कारण गणेश ही यज्ञादि सभी शुभ कार्यों में सर्वत्र अग्रपूज्य होंगे।

३. पारद शिवलिंग और शालग्राम पूजन का विशेष महत्त्व क्यों?

पारद शम्भु-बीज है। अर्थात् पारद (पारा) की उत्पत्ति महादेव शंकर के वीर्य से हुई मानी जाती है। इसलिए शास्त्रकारों ने उसे साक्षात् शिव माना है और पारदलिंग का सबसे अधिक महत्त्व बताकर इसे दिव्य बताया है। शुद्ध पारद संस्कार द्वारा बंधन करके जिस देवी-देवता की प्रतिमा बनाई जाती है, वह स्वयं सिद्ध होती है। वागभट्ट के मतानुसार, जो पारद शिवलिंग का भक्ति सहित पूजन करता है, उसे तीनों लोकों में स्थित शिवलिंगों के पूजन का फल मिलता है। पारदलिंग का दर्शन महापुण्य दाता है। इसके दर्शन से सैकड़ों अश्वमेध यज्ञों के करने से प्राप्त फल की प्राप्ति होती है, करोड़ों गोदान करने एवं हजारों स्वर्ण मुद्राओं के दान करने का फल मिलता है। जिस घर में पारद शिवलिंग का नियमित पूजन होता है, वहां सभी प्रकार के लौकिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति होती है। किसी भी प्रकार की कमी उस घर में नहीं होती, क्योंकि वहां ऋद्धि-सिद्धि और लक्ष्मी का वास होता है। साक्षात् भगवान् शंकर का वास भी होता है। इसके अलावा वहां का वास्तुदोष भी समाप्त हो जाता है। प्रत्येक सोमवार को पारद शिवलिंग पर अभिषेक करने पर तांत्रिक प्रयोग नष्ट हो जाता है।

शिव महापुराण में शिवजी का कथन है–

लिंगकोटिसहस्रस्य यत्फलं सम्यगर्चनात्।
तत्फलं कोटिगुणितं रसलिंगार्चनाद्भवेत ॥
ब्रह्महत्या सहस्राणि गौहत्यायाः शतानि च।
तत्क्षणद्विलयं यांति रसलिंगस्य दर्शनात् ॥
स्पर्शनात्प्राप्यत मुक्तिरिति सत्यं शिवोदितम् ॥

अर्थात् करोड़ों शिवलिंगों के पूजन से जो फल प्राप्त होता है, उससे भी करोड़ गुना फल पारद शिवलिंग की पूजा और दर्शन से प्राप्त होता है। पारद शिवलिंग के स्पर्श मात्र से मुक्ति प्राप्त होती है।

शालग्राम

नेपाल में गंडकी नदी के तल में पाए जाने वाले काले रंग के चिकने अंडाकार पत्थर, जिनमें एक छिद्र होता है और पत्थर के अंदर शंख, चक्र, गदा या पद्म खुदे होते हैं तथा कुछ पत्थरों पर सफेद रंग की गोल धारियां चक्र के समान पड़ी होती हैं, इनको शालग्राम कहा जाता है।

शालग्राम रूपी पत्थर की काली बटिया विष्णु के रूप में पूजी जाती है। शालग्राम को एक विलक्षण मूल्यवान पत्थर माना गया है, जिसका वैष्णवजन बड़ा सम्मान करते हैं। पुराणों में तो यहां तक कहा गया है कि जिस घर में शालग्राम न हो, वह घर नहीं, श्मशान के समान है। पद्मपुराण के अनुसार जिस घर में शालग्राम शिला विराजमान रहा करती है, वह घर समस्त तीर्थों से भी श्रेष्ठ होता है। इसके दर्शन मात्र से ब्रह्महत्या दोष से शुद्ध होकर अंत में मुक्ति प्राप्त होती है। पूजन करने वालों को समस्त भोगों का सुख मिलता है। शालग्राम को समस्त ब्रह्मांडभूत नारायण (विष्णु) का प्रतीक माना जाता है। भगवान् शिव ने स्कंदपुराण के कार्तिक महात्म्य में शालग्राम का महत्त्व वर्णित किया है। प्रति वर्ष कार्तिक मास की द्वादशी को महिलाएं तुलसी और शालग्राम का विवाह कराती हैं और नए कपड़े, जनेऊ आदि अर्पित करती हैं। हिंदू परिवारों में इस विवाह के बाद ही विवाहोत्सव शुरू हो जाते हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराण के प्रकृतिखंड अध्याय 21 में उल्लेख मिलता है कि जहां शालग्राम की शिला रहती है, वहां भगवान् श्री हरि विराजते हैं और वहीं संपूर्ण तीर्थों को साथ लेकर भगवती लक्ष्मी भी निवास करती हैं। शालग्राम शिला की पूजा करने से ब्रह्महत्या आदि जितने पाप हैं, वे सब नष्ट हो जाते हैं। छत्राकार शालग्राम राज्य देने की तथा वर्तुलाकार में प्रचुर संपत्ति देने की योग्यता है। विकृत, फटे हुए, शूल के नोक के समान, शकट के आकार के, पीलापन लिए हुए, भग्नचक्र वाले शालग्राम दुख, दरिद्रता, व्याधि, हानि के कारण बनते हैं। अतः इन्हें घर में नहीं रखना चाहिए।

पुराण में यह भी कहा गया है कि शालग्राम शिला का जल जो अपने ऊपर छिड़कता है, वह समस्त यज्ञों और संपूर्ण तीर्थों में स्नान कर चुकने का फल पा लेता है। शिला की उपासना करने से चारों वेद के पढ़ने तथा तपस्या करने का पुण्य मिलता है। जो निरंतर शालग्राम शिला के जल से अभिषेक करता है, वह संपूर्ण दान के पुण्य तथा पृथ्वी की प्रदक्षिणा के उत्तम फल का अधिकारी बन जाता है। इसमें संदेह नहीं कि शालग्राम के जल का निरंतर पान करने वाला पुरुष देवाभिलषित प्रसाद पाता है। उसे जन्म, मृत्यु और जरा से छुटकारा मिल जाता है। मृत्युकाल में इसका जलपान करने वाला समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को चला जाता है। शालग्राम पर चढ़े तुलसी पत्र को दूर करने वाले का दूसरे जन्म में स्त्री साथ नहीं देती। शालग्राम, तुलसी और शंख इन तीनों को जो व्यक्ति सुरक्षित रूप से रखता है, उससे भगवान् श्री हरि बहुत प्रेम करते हैं।

4. हनुमानजी को सिंदूर चढ़ाने की परंपरा क्यों?

अद्‌भुत रामायण में एक कथा का उल्लेख मिलता है, जिसमें मंगलवार की सुबह जब हनुमानजी को भूख लगी, तो वे माता जानकी के पास कुछ कलेवा पाने के लिए पहुंचे। सीता माता की मांग में लगा सिंदूर देखकर हनुमानजी ने उनसे आश्‍चर्यपूर्वक पूछा–"माता! मांग में आपने यह कौन-सा लाल द्रव्य लगाया है?"

इस पर सीता माता ने प्रसन्नतापूर्वक कहा–"पुत्र! यह सुहागिन स्त्रियों का प्रतीक, मंगल सूचक, सौभाग्यवर्धक सिंदूर है, जो स्वामी के दीर्घायु के लिए जीवनपर्यंत मांग में लगाया जाता है। इससे वे मुझ पर प्रसन्न रहते हैं।"

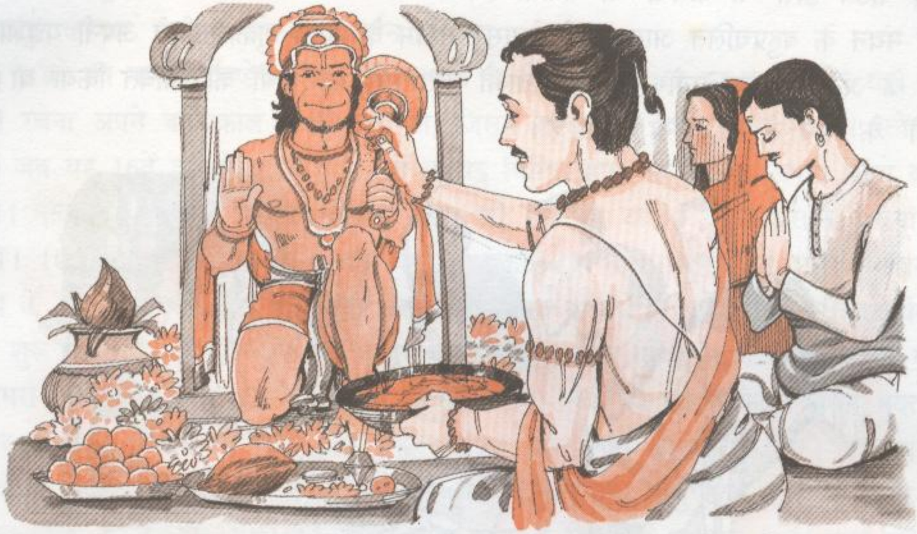

हनुमानजी ने यह जानकर विचार किया कि जब अंगुली भर सिंदूर लगाने से स्वामी की आयु में वृद्धि होती है, तो फिर क्यों न सारे शरीर पर इसे लगाकर अपने स्वामी भगवान् श्रीराम को अजर-अमर कर दूं। उन्होंने जैसा सोचा, वैसा ही कर दिखाया। अपने सारे शरीर पर सिंदूर पोतकर भगवान् श्रीराम की सभा में पहुंच गए। उन्हें इस प्रकार सिंदूरी रंग में रंगा देखकर सभा में उपस्थित सभी लोग हंसे, यहां तक कि भगवान् राम भी उन्हें देखकर मुस्कराए और बहुत प्रसन्न हुए। उनके सरल भाव पर मुग्ध होकर उन्होंने यह घोषणा की कि जो मंगलवार के दिन मेरे अनन्य प्रिय हनुमान को तेल और सिंदूर चढ़ाएंगे, उन्हें मेरी प्रसन्नता प्राप्त होगी और उनकी समस्त मनोकामनाएं पूर्ण होंगी। इस पर माता जानकी के वचनों में हनुमानजी को और भी अधिक दृढ़ विश्वास हो गया।

कहा जाता है कि उसी समय से भगवान् श्रीराम के प्रति हनुमानजी की अनुपम स्वामिभक्ति को याद करने के लिए उनके सारे शरीर पर चमेली के तेल में घोलकर सिंदूर लगाया जाता है। इसे चोला चढ़ाना भी कहते हैं।

5. अनिष्ट निवारण के लिए महामृत्युंजय मंत्र को विशेष महत्त्व क्यों?

शास्त्रों एवं पुराणों में असाध्य रोगों से मुक्ति एवं अकाल मृत्यु से बचने के लिए महामृत्युंजय जप करने का विशेष उल्लेख मिलता है। महामृत्युंजय भगवान् शिव को प्रसन्न करने का मंत्र है। इसके प्रभाव से व्यक्ति मौत के मुंह में जाते-जाते बच जाते हैं, मरणासन्न रोगी भी महाकाल शिव की अद्‌भुत कृपा से जीवन पा लेते हैं।

भावी बीमारी, दुर्घटना, अनिष्ट ग्रहों के दुष्प्रभावों को दूर करने, मृत्यु को टालने, आयुवर्धन के लिए सवा लाख महामृत्युंजय मंत्र जाप करने का विधान है। जब व्यक्ति स्वयं जप न कर सके, तो मंत्र जाप किसी योग्य पंडित द्वारा भी कराया जा सकता है।

सागर मंथन के बहुप्रचलित आख्यान में देवासुर संग्राम के समय शुक्राचार्य ने अपनी यज्ञशाला में इसी महामृत्युंजय के अनुष्ठानों का प्रयोग करके देवताओं द्वारा मारे गए दैत्यों को जीवित किया था। अतः इसे 'मृतसंजीवनी' के नाम से भी जाना जाता है।

ऋग्वेद (VII, 5912) में महामृत्युंजय मंत्र इस प्रकार है–

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

जिसे सम्पुट युक्त मंत्र बनाने के लिए इस प्रकार पढ़ा जाता है–

ॐ हौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॐ भूर्भुवः स्व सः जूं हौं ॐ॥

अर्थात् हम त्र्यम्बकं यानी तीन नेत्रों वाले शिव भगवान् की पूजा करते हैं। मैं पुष्टिवर्धक खरबूजे की भांति मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाऊं, अमृत से नहीं।

पद्मपुराण में महर्षि मार्कण्डेय कृत महामृत्युंजय मंत्र व स्तोत्र का वर्णन मिलता है। जिसके अनुसार महामुनि मृकण्डु के कोई संतान नहीं थी। इसलिए उन्होंने पत्नी सहित कठोर तप करके भगवान् शंकर को प्रसन्न किया। भगवान् शंकर ने प्रकट होकर कहा–'तुमको पुत्र प्राप्ति होगी पर यदि गुणवान, सर्वज्ञ, यशस्वी, परम धार्मिक और समुद्र की तरह ज्ञानी पुत्र चाहते हो, तो उसकी आयु केवल 16 वर्ष की होगी और उत्तम गुणों से हीन, अयोग्य पुत्र चाहते हो, तो उसकी आयु 100 वर्ष होगी।'

इस पर मुनि मृकण्डु ने कहा–'मैं गुण संपन्न पुत्र ही चाहता हूं, भले ही उसकी आयु छोटी क्यों न हो। मुझे गुणहीन पुत्र नहीं चाहिए।'

'तथास्तु' कहकर भगवान् शंकर अंतर्धान हो गए।

मुनि ने बेटे का नाम मार्कण्डेय रखा। वह बचपन से ही भगवान् शिव का परम भक्त था। उसने अनेक श्लोकों की रचना अपने बाल्यकाल में ही कर ली, जिसमें संस्कृत में महामृत्युंजय मंत्र व स्तोत्र की रचना प्रमुख थी। जब वह 16वें वर्ष में प्रवेश हुआ, तो मृकण्डु चिंतित हुए और उन्होंने अपनी चिंता को मार्कण्डेय को बताया। मार्कण्डेय ने कहा कि मैं भगवान् शंकर की उपासना करके उनको प्रसन्न करूंगा और अमर हो जाऊंगा। 16वें वर्ष के अंतिम दिन जब यमराज प्रकट हुए तो मार्कण्डेय ने उन्हें भगवान् शंकर के महामृत्युंजय के स्तोत्र का पाठ पूरा होने तक रुकने को कहा। यमराज ने गर्जना के साथ हठपूर्वक मार्कण्डेय को ग्रसना शुरू किया ही था कि मंत्र की पुकार पर भगवान् शंकर शिवलिंग में से प्रकट हो गए। उन्होंने क्रोध से यमराज की ओर देखा, तब यमराज ने डरकर बालक मार्कण्डेय को न केवल बंधन मुक्त कर दिया, बल्कि अमर होने का वरदान भी दिया और भगवान् शिव को प्रणाम करके चले गए। जाते समय यह भी कहा कि जो भी प्राणी इस मंत्र का जाप करेगा उसे अकाल मृत्यु और मृत्यु तुल्य कष्टों से छुटकारा मिलेगा। इस पौराणिक कथा का उल्लेख करने का उद्देश्य मात्र इतना है कि स्वयं भगवान् शंकर द्वारा बताई गई मृत्यु भी, उन्हीं के भक्त द्वारा रचित महामृत्युंजय मंत्र के कारण टल गई और मार्कण्डेय अमर हो गए।

6. ग्रहणकाल में भोजन करना वर्जित क्यों?

हमारे ऋषि-मुनियों ने सूर्य और चंद्र ग्रहण लगने के समय भोजन करने के लिए मना किया है, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि ग्रहण के दौरान खाद्य वस्तुओं, जल आदि में सूक्ष्म जीवाणु एकत्रित होकर दूषित कर देते हैं। इसलिए इनमें कुश डाल दिया जाता है, ताकि कीटाणु कुश में एकत्रित हो जाएं और उन्हें ग्रहण के बाद फेंका जा सके। शास्त्रों में कहा गया है कि ग्रहण के बाद स्नान करके पवित्र होने के पश्चात् ही भोजन करना चाहिए। ग्रहण के समय भोजन करने से सूक्ष्म कीटाणुओं के पेट में जाने से रोग होने की आशंका रहती है। इसी वजह से यह विधान बनाया गया है।

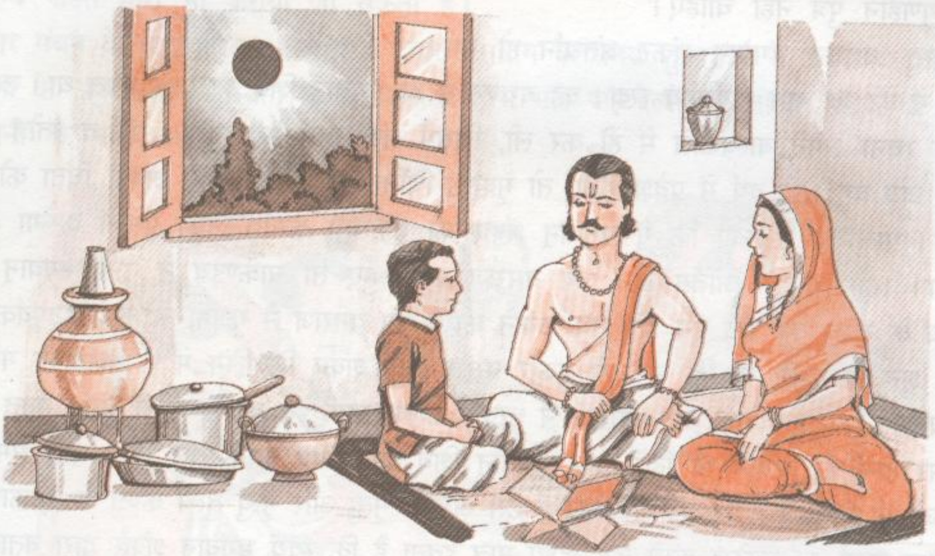

अपने शोधों से वैज्ञानिक टारिंस्टन ने यह पाया है कि ग्रहण के समय मनुष्य की पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है, जिसके कारण इस समय किया गया भोजन अपच, अजीर्ण आदि शिकायतें पैदा कर सकता है।

भारतीय धर्म विज्ञानवेत्ताओं का मानना है कि सूर्य और चंद्र ग्रहण लगने के 10 घंटे पूर्व से ही उसका कुप्रभाव शुरू हो जाता है। अंतरिक्षीय प्रदूषण के इस समय को सूतक काल कहा गया है। इसलिए सूतक काल और ग्रहण के समय में भोजन तथा पेय पदार्थों का सेवन मना किया गया है। चूंकि ग्रहण से हमारी जीवनी शक्ति का ह्रास होता है और तुलसी दल (पत्र) में विद्युत शक्ति व प्राणशक्ति सबसे अधिक होती है, इसलिए सौर मंडलीय ग्रहण काल में ग्रहण प्रदूषण को समाप्त करने के लिए भोजन तथा पेय सामग्री में तुलसी के कुछ पत्ते डाल दिए जाते हैं, जिसके प्रभाव से न केवल भोज्य पदार्थ बल्कि अन्न, आटा आदि भी प्रदूषण से मुक्त बने रहते हैं।

7. गंगा विशेष पवित्र नदी क्यों?

गंगा प्राचीन काल से ही भारतीय जनमानस में अत्यंत पूज्य रही है। इसका धार्मिक महत्त्व जितना है, विश्व में शायद ही किसी नदी का होगा। यह विश्व की एकमात्र नदी है, जिसे श्रद्धा से माता कहकर पुकारा जाता है।

महाभारत में कहा गया है–

यद्यकार्यशतम् कृत्वाकृतम् गंगाभिषेचनम् । सर्व तत् तस्य गंगाम्भो दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥
सर्व कृतयुगे पुण्यम त्रेतायां पुष्करं स्मृतम् । द्वापरेऽपि कुरुक्षेत्रं गंगा कलियुगे स्मृता ॥
पुनाति कर्तिता पापं दृष्य भद्रं प्रयच्छति । अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥

–महाभारत/वनपर्व 85/89-90-93

अर्थात् जैसे अग्नि ईंधन को जला देती है, उसी प्रकार सैकड़ों निषिद्ध कर्म करके भी यदि गंगा स्नान किया जाए, तो उसका जल उन सब पापों को भस्म कर देता है। सत्ययुग में सभी तीर्थ पुण्यदायक होते थे। त्रेता में पुष्कर और द्वापर में कुरुक्षेत्र तथा कलियुग में गंगा की सबसे अधिक महिमा बताई गई है। नाम लेने मात्र से गंगा पापी को पवित्र कर देती है, देखने से सौभाग्य तथा स्नान या जल ग्रहण करने से सात पीढ़ियों तक कुल पवित्र हो जाता है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने **'स्रोतसामस्मि जाह्नवी'** अर्थात् जल स्रोतों में जाह्नवी (गंगा) मैं ही हूं, कहकर गंगा को अपना स्वरूप बताया है। शास्त्रकारों का कहना है–**औषधि जाह्नवी तोयं वैद्यो नारायणः हरिः।** अर्थात् आध्यात्मिक रोगों की दवा गंगाजल है और उन रोगों के रोगियों के चिकित्सक परमात्मा नारायण हरि हैं। गंगा का आध्यात्मिक महत्त्व शास्त्रों में विस्तार से बताया गया है–

पद्मपुराण में कहा गया है कि गंगा के प्रभाव से मनुष्य के अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं और अनंत पुण्य प्राप्त होते हैं। स्वर्गलोक में निवास मिल जाता है।

अग्निपुराण में कहा गया है कि गंगा सद्‌गति देने वाली है। जो नित्य गंगाजल सेवन करते हैं, वे अपने वंश सहित तर जाते हैं। गंगा स्नान, गंगाजल के पान तथा गंगा नाम का जप करने से असंख्य मनुष्य पवित्र और पुण्यवान हुए हैं। गंगा के समान कोई जलतीर्थ नहीं है।

स्कंदपुराण में कहा गया है कि जैसे बिना इच्छा के भी स्पर्श करने पर आग जला ही देती है, उसी प्रकार अनिच्छा से भी गंगा-स्नान करने पर गंगा मनुष्य के पापों को धो देती है।

अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनो हि यथा दहेत्।
अनिच्छयापिसंस्नाता गंगा पापं तथा दहेत्॥

—*स्कंदपुराण, काशी प. 27/49*

गंगा जल पर किए शोध कार्यों से स्पष्ट है कि यह वर्षों तक रखने पर भी खराब नहीं होता। स्वास्थ्यवर्धक तत्त्वों का बाहुल्य होने के कारण गंगा का जल अमृत के तुल्य, सर्व रोगनाशक, पाचक, मीठा, उत्तम, हृदय के लिए हितकर, पथ्य, आयु बढ़ाने वाला तथा त्रिदोष नाशक होता है। इसका जल अधिक संतृप्त माना गया है। इसमें पर्याप्त लवण जैसे कैलशियम, पोटेशियम, सोडियम आदि पाए जाते हैं और 45 प्रतिशत क्लोरीन होता है, जो जल में कीटाणुओं को पनपने से रोकता है। इसी की उपस्थिति के कारण पानी सड़ता नहीं और न ही उसमें कीटाणु पैदा होते हैं। इसकी अम्लीयता एवं क्षारीयता लगभग समान होती है। गंगाजल में अत्यधिक शक्तिशाली कीटाणु-निरोधक तत्त्व क्लोराइड पाया जाता है। डॉ. कोहिमान के मत में जब किसी व्यक्ति की जीवनी शक्ति जवाब देने लगे, उस समय यदि उसे गंगाजल पिला दिया जाए, तो आश्चर्यजनक ढंग से उसकी जीवनी शक्ति बढ़ती है और रोगी को ऐसा लगता है कि उसके भीतर किसी सात्विक आनंद का स्रोत फूट रहा है। शास्त्रों के अनुसार इसी वजह से अंतिम समय में मृत्यु के निकट आए व्यक्ति के मुंह में गंगा जल डाला जाता है।

गंगा स्नान से पुण्य प्राप्ति के लिए श्रद्धा आवश्यक है। इस संबंध में एक कथा है—एक बार पार्वती ने शंकर भगवान् से पूछा—'गंगा में स्नान करने वाले प्राणी पापों से छूट जाते हैं ?' इस पर शंकर भगवान् बोले—'जो भावनापूर्वक स्नान करता है, उसी को सद्‌गति मिलती है, अधिकांश लोग तो मेला देखने जाते हैं।' पार्वती को इस जवाब से संतोष नहीं मिला। शंकर जी ने कहा—'चलो तुम्हें इसका प्रत्यक्ष दर्शन कराते हैं।' गंगा के निकट शंकर जी कोढ़ी का रूप धारण कर रास्ते में बैठ गए और साथ में पार्वतीजी सुंदर स्त्री का रूप धारण कर बैठ गईं। मेले के कारण भीड़ थी। जो भी पुरुष कोढ़ी के साथ सुंदर स्त्री को देखता, वह सुंदर स्त्री की ओर ही आकर्षित होता। कुछ ने तो उस स्त्री को अपने साथ चलने का भी प्रस्ताव दिया। अंत में एक ऐसा व्यक्ति भी आया, जिसने स्त्री के पातिव्रत्य धर्म की सराहना की और कोढ़ी को गंगा स्नान कराने में मदद दी। शंकर भगवान् प्रकट हुए और बोले—'प्रिये ! यही श्रद्धालु सद्‌गति का सच्चा अधिकारी है।'

8. मनुष्य जीवन दुर्लभ क्यों?

प्राचीन काल से हमारे ऋषि-मुनियों, विचारकों और मर्मज्ञों ने इस बात का समर्थन किया है कि मनुष्य जीवन अपने आप में अद्‌भुत एवं महान है। ईश्वर ने पृथ्वी पर 84 लाख योनियां बनाई हैं जिसमें जीवात्मा भटकने के बाद मनुष्य का जन्म पाती है, क्योंकि पेड़-पौधों में 30 लाख, कीड़े-मकोड़ों में 27 लाख, पक्षी में 14 लाख, पानी के जीव-जंतुओं में 9 लाख और पशु में 4 लाख योनियां पाई जाने की मान्यता है। *विवेक चूड़ामणि 5* में कहा गया है–**दुर्लभं मानुषं देहं** अर्थात् मनुष्य देह दुर्लभ है। इसी प्रकार **चाणक्य नीति** 14/3 में लिखा है–

पुनर्वित्तं पुनर्मितं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः॥

अर्थात् नष्ट हुआ धन पुनः मिल जाता है, रूठे हुए या छूटे व बिछड़े मित्र पुनः मिल जाते हैं या नए मित्र बन जाते हैं, पत्नी का बिछोह, त्याग या देहांत हो जाने पर दूसरी पत्नी भी मिल जाती है, जमीन-जायदाद, देश, राज्य पुनः मिल जाते हैं और ये सब बार-बार प्राप्त हो सकते हैं, लेकिन यह मानव शरीर बार-बार नहीं मिलता। क्योंकि 'नरत्वं दुर्लभं लोके' इस संसार में नरदेह प्राप्त करना दुर्लभ है–ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।

भगवान् श्रीराम स्वयं मनुष्य शरीर की महत्ता बताते हुए कहते हैं–

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सबग्रंथन गावा॥

अर्थात् बड़े सौभाग्य से यह नर-शरीर मिला है। सभी ग्रंथों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है।

नरक स्वर्ग अपवर्ग नसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥

अर्थात् यह मनुष्य योनि नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है, शुभ ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देने वाली है।

नर तन भव बारिधि कहुं बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥

अर्थात् यह मनुष्य देह संसार सागर से तरने के लिए जहाज है। मेरी कृपा ही अनुकूल हवा है।

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक संवारा॥

अर्थात् यह नर शरीर साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर भी जो अपने परलोक की तैयारी न कर सके, वह अभागा है।

मानव योनि को सर्वश्रेष्ठ इसीलिए कहा गया है, क्योंकि इस योनि में ही जन्म-जन्मांतर से मुक्ति मिल सकती है। अतः ईश्वर भक्ति और शुभ कार्यों में समय व्यतीत करना चाहिए।

9. धर्म की आवश्यकता क्यों?

धर्म का विषय बड़ा गहन है। धर्म शब्द धृ+मन् से बनता है। धृ का अर्थ जो है, जो विद्यमान है, जो स्थापित है, जो सुरक्षित है, जो नित्य सहायक है, जो आप धारण किया हुआ है और मन् का अर्थ है याद करना, मानना, मूल्यवान समझना, बड़ा मानना, प्रत्यक्ष करना और पूजा करना। हमारे वेद-पुराणों तथा धार्मिक ग्रंथों में धर्म की परिभाषा कई तरह से की गई है–

धर्मेण धार्यते लोकः। *–चाणक्य सूत्र/234*

अर्थात् धर्म ही संसार को धारण किए हुए है।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। *–वैशेषिक शास्त्र 1/1/2*

अर्थात् जिन नियमों के आचरण एवं अनुष्ठान करने से इस लोक (जीवन) और परलोक दोनों में अभीष्ट सिद्धियां प्राप्त हों, उस आचरण को धारण करना धर्म है।

सुगां ऋतस्य पंथा। *–ऋग्वेद 8/3/13*

अर्थात् धर्म का मार्ग मानव को सुख देता है, दुख से मुक्त करता है।

धर्मनित्यास्तु ये केचिन्न ते सीदन्ति कर्हिचित्। *–महाभारत/वनपर्व 263/44*

अर्थात् जो धर्म परायण है, वे कभी संकट को नहीं प्राप्त होते हैं।

सुखस्य मूलं धर्मः। *–चाणक्य सूत्र*

अर्थात् सुख का मूल धर्म है।

धर्मो माता पिता चैव धर्मो बन्धुः सुहृत्तथा।
धर्मः स्वर्गस्य धर्मात्स्वर्गमषाप्यते॥

अर्थात् धर्म माता है, धर्म पिता है, धर्म ही बंधु है और धर्म ही सच्चा मित्र है। धर्म ही स्वर्ग की सीढ़ी है, धर्म से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

धारयते जनैरिति धर्म।

अर्थात् मनुष्यों द्वारा जिसे धारण किया जाता है, अपने आचरण में लाया जाता है, वही धर्म कहलाता है।

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मावर्जितम्।
यतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी व संशयः॥ *–चाणक्य नीति 13/9*

धर्म रहित मनुष्य मरे हुए मनुष्य के समान है। धार्मिक मनुष्य मरने के बाद भी जीवित रहता है, इसमें कोई शक नहीं, क्योंकि उसकी कीर्ति अमर रहती है। ऐसा धार्मिक मनुष्य दीर्घजीवी होता है।

महाभारत शांतिपर्व में कहा गया है—'धर्म मनुष्यों का मूल है, धर्म ही स्वर्ग में देवताओं को अमर बनाने वाला अमृत है, धर्म का अनुष्ठान करने से मनुष्य मरने के अनन्तर नित्य सुख भोगते हैं।'

आगे महाभारत में यह भी लिखा है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥ *—महाभारत/स्वर्गारोहण 5/63*

अर्थात् मनुष्य को किसी भी समय काम से, भय से, लोभ से या जीवन रक्षा के लिए भी धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए, क्योंकि धर्म नित्य है और सुख दुःख अनित्य है तथा जीव नित्य है और जीवन का हेतु अनित्य है।

मनु महाराज ने धर्म के जो दस लक्षण बताए हैं, वे इस प्रकार हैं—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ *—मनुस्मृति 6/92*

अर्थात् धैर्य, क्षमा, मन पर नियंत्रण, चोरी न करना (न्यायपूर्ण जीवन) शरीर के अंदर बाहर की पवित्रता, इंद्रियों पर नियंत्रण, विवेक बुद्धि (सद्बुद्धि), विद्या, सत्य, अक्रोध—ये दस लक्षण धर्म के हैं। इनका पालन करने से जहां व्यक्ति स्वयं स्वस्थ और सुखी रहेगा, वहीं पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर भी सब सुखी रहेंगे।

वाल्मीकि रामायण में कहा गया है—

धर्मादर्थ प्रभवति धर्मात्प्रभवते सुखम्।
धर्मेण लभते सर्व धर्मसारमिदं जगत्॥ *—अरण्यकांड 9/30*

अर्थात् धर्म से अर्थ प्राप्त होता है, धर्म से सुख का उदय होता है, धर्म से सब कुछ मिलता है। संसार में धर्म ही सार है।

धर्म के संबंध में महाभारत, अनुशासन पर्व में एक दृष्टांत का वर्णन मिलता है। एक बार हिमालय पर्वत पर शिवजी तपस्या कर रहे थे। उस समय माता पार्वती ने उनके पास जाकर पूछा—'भगवन! धर्म का क्या स्वरूप है? जो धर्म नहीं जानते ऐसे मनुष्य उसका किस प्रकार आचरण कर सकते हैं?'

इस पर शिवजी ने कहा—'देवी! किसी भी जीव की हिंसा न करना, सत्य बोलना, सब प्राणियों पर दया करना, मन और इंद्रियों पर नियंत्रण रखना तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान देना—यह गृहस्थ आश्रम का उत्तम धर्म है। गृहस्थ धर्म का पालन करना, पराई स्त्री के संसर्ग से दूर रहना, धरोहर और स्त्री की रक्षा करना, बिना दिए किसी दूसरे की वस्तु को न लेना, मांस और मदिरा को त्याग देना—ये धर्म के पांच भेद हैं, जिनसे सुख की प्राप्ति होती है। धर्म को श्रेष्ठ मानने वाले मनुष्यों को इन धर्मों का पालन अवश्य करना चाहिए।'

10. हिंदू धर्म में संस्कारों का महत्त्व क्यों?

भारतीय संस्कृति का मूलभूत उद्देश्य श्रेष्ठ संस्कारवान मानव का निर्माण करना है। सामाजिक दृष्टि से सुख-समृद्धि और भौतिक ऐश्वर्य आवश्यक है, किंतु मनुष्य जीवन केवल खाने-पीने और मौज-मस्ती करने के लिए ही नहीं है। हमारे ऋषियों ने भौतिक उन्नति को गौण और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्ति को जीवन का मुख्य उद्देश्य बताया है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्वयं को तैयार करने की क्रिया का नाम ही संस्कार है। वेद, पुराणों तथा धर्म-शास्त्रों में शिशु के गर्भ में प्रवेश करने से लेकर जीवन के विभिन्न अवसरों पर और अंततः शरीर छोड़ने तक विविध संस्कारों का विधान है। संस्कारों से व्यक्ति के मन के विकार नष्ट होते हैं तथा व्यक्तित्व प्रभावशाली और जीवन आनंदपूर्ण बनता है।

संस्कार क्या हैं ?

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार–**संस्कार उसे कहते हैं, जिससे दोष हटते हैं और गुणों की वृद्धि होती है।**

शंकराचार्य के अनुसार–

संस्कारो हि नाम संस्कार्यस्य गुणाधानेन वा स्याद्दोषापनयनेन वा। *–ब्रह्मसूत्र भाष्य 1/1/4*

अर्थात् व्यक्ति में गुणों का आरोपण करने अथवा उसके दोषों को दूर करने के लिए, जो कर्म किया जाता है, उसे संस्कार कहते हैं।

महर्षि चरक के मतानुसार–**संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते।**

अर्थात् व्यक्ति या वस्तु में नए गुणों का आधान (जमा करने, समाने) करने का नाम संस्कार है।

संस्कार विधि में लिखा है–**जन्मना जायते शूद्रऽसंस्काराद्द्विज उच्यते।**

अर्थात् जन्म से सभी शूद्र होते हैं, लेकिन संस्कारों द्वारा व्यक्ति को द्विज बनाया जाता है।

हमारे ऋषि-मुनि यह मानते थे कि जन्म-जन्मांतरों की वासनाओं का लेप जीवात्मा पर रहता है। पूर्व-जन्म के इन्हीं संस्कारों के अनुरूप ही जीव नया शरीर धारण करता है, अर्थात् जन्म लेता है और उन संस्कारों के अनुरूप ही कर्मों के प्रति उसकी आसक्ति होती है। इस प्रकार जीव सर्वथा संस्कारों का दास होता है।

मीमांसा दर्शनकार के मतानुसार–**कर्मबीजं संस्कारः।** *अर्थात् संस्कार ही कर्म का बीज है तथा* **'तन्निमित्ता सृष्टि'** अर्थात् *वहीं सृष्टि का आदि कारण है।*

प्रत्येक व्यक्ति का आचरण पूर्व जन्मों के उसके निजी संस्कारों के अतिरिक्त उसके वर्तमान वंश या कुल के संस्कारों से भी प्रभावित रहता है।

आमतौर पर मनुष्य का आकर्षण विविध इंद्रिय भोगों की तरफ शीघ्र ही हो जाता है। स्वभाव की इसी कमजोरी के कारण मानव समय-समय पर मानसिक विकृतियों एवं दुर्बलताओं का शिकार होता है, जिससे स्वयं मानव और समाज चरित्रहीनता और अनैतिकता का दुख भोगता है। चूंकि मानव में दोषों का परिष्कार करने की क्षमता सर्वाधिक होती है, अतः संस्कारों का सर्वाधिक महत्त्व भी मानव समाज के लिए माना गया है।

संस्कारों की परंपरा का व्यक्ति पर अद्वितीय प्रभाव माना जाता है। संस्कारों के समय किए जाने वाले विभिन्न कर्मकांडों, यज्ञ, मंत्रोच्चारण आदि की प्रक्रिया को विज्ञान के ध्वनि सिद्धांत, चुंबकीय शक्ति संचरण, प्रकाश तथा रंगों के प्रभाव आदि द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है। अतः संस्कार प्रणाली की प्रामाणिकता पूरी तरह असंदिग्ध है। कर्मों के साथ-साथ अच्छे-बुरे संस्कार भी बनते रहते हैं। मनोविज्ञान मानता है कि मनुष्य किसी बात को सामान्य उपदेशों, प्रशिक्षणों अथवा परामर्शों द्वारा दिए गए निर्देशों की तुलना में अनुकूल वातावरण में जल्दी सीखता है।

उल्लेखनीय है कि मस्तिष्क का स्थूल कार्य तो सचेतन मन द्वारा होता है और सूक्ष्म कार्य अचेतन मन द्वारा। बाह्य जगत से विचार सामग्री सचेतन मन जमा करता है, जबकि उस सामग्री को अचेतन मन संचित कर लेता है। अतः मनुष्य अपने सचेतन मन को जैसा बनाता है, वैसा ही उसका अचेतन मन भी आप-से-आप बन जाता है। निपुण मन ही आत्मा का सबसे बड़ा सेवक और सहायक होता है। सुशिक्षित और परिष्कृत मन के बिना आत्मा की शक्ति का जाग्रत होना संभव नहीं हो पाता।

संस्कार प्रक्रिया में पुरोहित द्वारा देवताओं के आवाहन के कारण देव अनुकम्पा की अनुभूति, यज्ञ आदि कर्मकांड के कारण धर्म-भावनाओं से ओत-प्रोत मनोभूमि, स्थान की पवित्रता, हर्षोल्लास का वातावरण, यजमान द्वारा भावपूर्ण शपथ ग्रहण, स्वजन संबंधियों, परिचितों, मित्रों की उपस्थिति, ये सब संस्कारित होने वाले व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की मानसिक स्थिति में पहुंचा देते हैं। कर्मकांड की ये क्रियाएं मन पर अमिट और चिरस्थाई प्रभाव छोड़ती हैं। यह प्रभाव मन को परिस्थिति के अनुकूल शिक्षित करता है। उदाहरण के लिए एक व्यभिचारी व्यक्ति जब अपनी प्रेमिका को विवाह आदि करने के लंबे-चौड़े आश्वासन देता है, तो उसका कोई महत्त्व नहीं समझा जाता, जबकि विवाह संस्कार में संपन्न समस्त धार्मिक कर्मकांडों का प्रभाव ऐसा पड़ता है कि वर-वधू आजीवन एक अटूट बंधन में बंधे अनुभव करते हैं। जिस वातावरण में और भावना के साथ सारी रस्में पूरी की जाती हैं, उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव उन्हें जीवन-भर अलग होने से रोकता है।

संस्कार के अनेक प्रकार : संस्कारों की संख्या अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग बताई है। गौतम स्मृति में 40 संस्कारों का उल्लेख किया गया है–**चत्वारिंशत्संस्कारैः संस्कृतः।** कहीं-कहीं **48 संस्कारों** का भी उल्लेख मिलता है। महर्षि अंगिरा ने **25 संस्कार** बताए हैं। दस कर्म पद्धति के मतानुसार संस्कारों की संख्या 10 मानी गई है, जबकि महर्षि वेदव्यास ने अपने ग्रंथ व्याससमृति में प्रमुख **सोलह (षोडश) संस्कारों** का उल्लेख किया है–

गर्भाधानं पुंसवनं सीमांतो जातकर्म च। नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नशनं वपन क्रिया॥
कर्णविधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः। केशांतः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः। *–व्याससमृति 1/13-15*

वेद का कर्म मीमांसा दर्शन 16 संस्कारों को ही मान्यता प्रदान करता है। आधुनिक विद्वानों ने इन्हें सरल और कम खर्चीला बनाने का प्रयास किया है, जिससे अधिक-से-अधिक लोग इनसे लाभ उठा सकें। इनमें प्रथम 8 संस्कार प्रवृत्ति मार्ग में एवं शेष 8 मुक्ति मार्ग के लिए उपयोगी हैं। हर संस्कार का अपना महत्त्व, प्रभाव और परिणाम होता है। यदि विधि-विधान से उचित समय और वातावरण में इन संस्कारों को कराया जाए, तो उनका प्रभाव असाधारण होता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को ये संस्कार अवश्य करने चाहिए।

11. गर्भाधान संस्कार क्यों?

दांपत्य जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य है–श्रेष्ठ गुणों वाली, स्वस्थ, ओजस्वी, चरित्रवान और यशस्वी संतान प्राप्त करना। स्त्री-पुरुष की प्राकृतिक संरचना ही ऐसी है कि यदि उचित समय पर संभोग किया जाए, तो संतान होना स्वाभाविक ही है, किंतु गुणवान संतान प्राप्त करने के लिए माता-पिता को विचार पूर्वक इस कर्म में प्रवृत्त होना पड़ता है। श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति के लिए विधि-विधान से किया गया संभोग ही गर्भाधान संस्कार कहा जाता है। इसके लिए माता-पिता को शारीरिक और मानसिक रूप से अपने आपको तैयार करना होता है, क्योंकि आने वाली संतान उनके ही आत्म का प्रतिरूप है। इसीलिए तो पुत्र को आत्मज और पुत्री को आत्मजा कहा जाता है।

गर्भाधान के संबंध में **स्मृति संग्रह** में लिखा है–

निषेकाद् बैजिकं चैनो गार्भिकं चापमृज्यते।
क्षेत्रसंस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्॥

अर्थात् विधि पूर्वक संस्कार से युक्त गर्भाधान से अच्छी और सुयोग्य संतान उत्पन्न होती है। इस संस्कार से वीर्य संबंधी तथा गर्भ संबंधी पाप का नाश होता है, दोष का मार्जन तथा क्षेत्र का संस्कार होता है। यही गर्भाधान संस्कार का फल है।

पर्याप्त खोजों के बाद चिकित्सा शास्त्र भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुष जिस भाव से भावित होते हैं, उसका प्रभाव उनके रज-वीर्य में भी पड़ता है। अतः उस रज-वीर्यजन्य संतान में माता-पिता के वे भाव स्वतः ही प्रकट हो जाते हैं–

आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशोभिः समन्वितौ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः॥ *–सुश्रुत संहिता/शारीर/2/46/50*

अर्थात् स्त्री और पुरुष जैसे आहार, व्यवहार तथा चेष्टा से संयुक्त होकर परस्पर समागम करते हैं, उनका पुत्र भी वैसे ही स्वभाव का होता है।

धन्वंतरि भगवान् का कहना है–*ऋतु स्नान के बाद स्त्री जैसे पुरुष का दर्शन करती है, वैसा ही पुत्र उत्पन्न होता है।* अतः जो स्त्री चाहती है कि मेरे पति के समान गुण वाला या अभिमन्यु जैसा वीर, ध्रुव जैसा भक्त, जनक जैसा आत्मज्ञानी, कर्ण जैसा दानी पुत्र हो, तो उसे चाहिए कि ऋतुकाल के चौथे दिन स्नान आदि से पवित्र होकर अपने आदर्श रूप इन महापुरुषों के चित्रों का दर्शन तथा सात्विक भावों से उनका चिंतन करे और इसी सात्विक भाव में **योग्य रात्रि** को गर्भाधान करावे। रात्रि के तृतीय प्रहर (12 से 3 बजे) की संतान हरिभक्त और धर्मपरायण होती है।

उक्त प्रामाणिक तथ्यों को ध्यान में रखकर ही गर्भाधान प्रक्रिया को एक पवित्र धार्मिक कर्तव्य के रूप में संपन्न करने की व्यवस्था की गई और इसके लिए विधिवत् देवी-देवताओं की प्रार्थना करके उनकी कृपा मांगी गई। संक्षेप में–गर्भाधान से पहले पवित्र होकर द्विजाति को इस मंत्र की प्रार्थना करनी चाहिए–

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भ धेहि प्रथुष्टुके।
गर्भं ते अश्विनी देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ॥ —*बृहदारण्यक 6/4/21*

अर्थात् हे सिनीवाली देवी! एवं हे विस्तृत जघनों वाली पृथुष्टुका देवी! आप इस स्त्री को गर्भ धारण करने की सामर्थ्य दें और उसे पुष्ट करें। कमलों की माला से सुशोभित दोनों अश्विनी कुमार तेरे गर्भ को पुष्ट करें।

वर्जित संभोग—संतान प्राप्ति के उद्देश्य से किए जाने वाले संभोग के लिए अनेक वर्जनाएं भी निर्धारित की गई हैं, जैसे गंदी या मलिन अवस्था में, मासिक धर्म के समय, प्रातः या सायं की संधिवेला में अथवा चिंता, भय, क्रोध आदि मनोविकारों के पैदा होने पर गर्भाधान नहीं करना चाहिए। दिन में गर्भाधान करने से उत्पन्न संतान दुराचारी और अधम होती है। दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु जैसा महादानव इसलिए उत्पन्न हुआ था कि उसने आग्रह पूर्वक अपने स्वामी कश्यप के द्वारा सध्याकाल में गर्भाधान करवाया था। श्राद्ध के दिनों, पर्वों व प्रदोष-काल में भी संभोग करना शास्त्रों में वर्जित है।

काम को हमारे यहां बड़ी पवित्र भावना के रूप में स्वीकार किया गया है। गीता में कहा है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि। —*श्रीमद्भगवद्गीता 7/11*

शुभ मुहूर्त में शुभ मंत्र से प्रार्थना करके गर्भाधान करें। इस विधान से कामुकता का दमन तथा मन शुभ भावना से युक्त हो जाता है।

12. पुंसवन संस्कार क्यों?

गर्भ जब दो-तीन महीने का होता है अथवा स्त्री में गर्भ के चिह्न स्पष्ट हो जाते हैं, तब गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास के लिए पुंसवन संस्कार किया जाता है। प्रायः तीसरे महीने से स्त्री के गर्भ में शिशु के भौतिक शरीर का निर्माण प्रारंभ हो जाता है, जिसके कारण शिशु के अंग और संस्कार दोनों अपना स्वरूप बनाने लगते हैं। गर्भस्थ शिशु पर माता-पिता के मन और स्वभाव का गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः माता को मानसिक रूप से गर्भस्थ शिशु की भली प्रकार देखभाल करने योग्य बनाने के लिए इस संस्कार का विशेष महत्त्व है। धर्म ग्रंथों में पुंसवन संस्कार करने के दो प्रमुख उद्देश्य मिलते हैं। पहला उद्देश्य पुत्र प्राप्ति और दूसरा स्वस्थ, सुंदर तथा गुणवान संतान पाने का है। पहले उद्देश्य के संदर्भ में स्मृति संग्रह में लिखा है–**गर्भाद् भवेच्च पुंसूते पुंस्त्वयस्प्रतिपादनम्** *अर्थात् इस गर्भ से पुत्र उत्पन्न हो, इसलिए पुंसवन संस्कार किया जाता है।* मनुस्मृति 9/138 में पुंसवन संस्कार का विस्तार से विधान मिलता है–**पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं सुतः** *अर्थात् पुम् नामक नरक से जो रक्षा करता है, उसे पुत्र कहते हैं।* इसीलिए नरक से बचने के लिए मनुष्य पुत्र-प्राप्ति की कामना करता है।

मनु महाराज के शब्दों में–**गर्भाद् भवेच्च पुंसूते पुंस्त्वस्य प्रतिपादनम्** *अर्थात् गर्भ के अंदर कन्या शरीर न बनकर पुत्र शरीर ही बने, यही पुंसवन संस्कार का फल है।*

पुंसवन संस्कार की व्याख्या करते हुए धर्म ग्रंथों में धार्मिक आस्था पर विशेष बल दिया गया है। जिसका सीधा-सा अर्थ माता को आत्मिक रूप से सबल बनाना है। यथा–जो लोग वेद-मंत्रों की अलौकिक शक्ति पर परम श्रद्धा रखकर पुंसवन संस्कार करते हैं, तो इससे स्त्री के भावप्रधान मन में पुत्रभाव का संकल्प उत्पन्न होता है। जब तीन माह का गर्भ हो, तो लगातार नौ दिन तक सुबह या रात्रि में सोते समय स्त्री को आगे लिखा गया मंत्र अर्थ सहित पढ़कर सुनाया जाए तथा मन में पुत्र ही होगा, ऐसा बार-बार दृढ़ निश्चय एवं पूर्ण श्रद्धा के साथ संकल्प किया जाए, तो पुत्र ही होता है।

पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः।
पुमांसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमान्नु जायताम्॥ *–सा. वे. मं. ब्रा. 1/4/9*

अर्थात् अग्नि देवता पुरुष हैं, देवराज इंद्र भी पुरुष हैं तथा देवताओं के गुरु बृहस्पति भी पुरुष हैं, तुझे भी पुरुषत्वयुक्त पुत्र ही उत्पन्न हो।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्म ग्रंथ भ्रूण के लिंग परिवर्तन हो जाने की पुष्टि करते हैं, किंतु आधुनिक विज्ञान धर्म ग्रंथों की पुंसवन संस्कार की इस मान्यता को स्वीकार नहीं करता है। विज्ञान का मानना है कि नारी के डिंबाणु से पुरुष के शुक्राणु मिलते समय ही यह निश्चित हो जाता है कि संतान लड़का होगा या लड़की। विज्ञान मानता है कि नारी डिंबाणु में 22 जोड़े गुण सूत्र होते हैं, जिनमें सभी x x होते हैं। पुरुष शुक्राणु में 23 जोड़े गुण सूत्र होते हैं, जिनमें से 22 जोड़े x x और एक जोड़ा x y होता है। यदि स्त्री के x गुण सूत्र से पुरुष का x गुण सूत्र मिलता है, तो संतान लड़की होती है और यदि स्त्री

के x गुण सूत्र से पुरुष का y गुण सूत्र मिलता है, तो संतान लड़का होती है। गुण सूत्रों का यह मेल संभोग के समय ही हो जाता है तथा इसे किसी भी स्थिति में बाद में नहीं बदला जा सकता। अतः दो या तीन महीने बाद यह तो पता किया जा सकता है कि गर्भ में संतान लड़का है या लड़की है, किंतु किसी भी विधान से इसको बदला नहीं जा सकता।

पुंसवन संस्कार से लिंग परिवर्तन के संबंध में धार्मिक ग्रंथों की निश्चित धारणा और विज्ञान के प्रामाणिक तथ्यों में आज तक मतभेद बना हुआ है, किंतु धर्म ग्रंथों के दूसरे उद्देश्य अर्थात् गुणवान संतान की प्राप्ति के लिए पुंसवन संस्कार के महत्त्व पर आपत्ति नहीं की जा सकती।

13. सीमंतोन्नयन संस्कार क्यों?

यह संस्कार गर्भ के चौथे, छठे या आठवें मास में किया जाता है, जिसका उद्देश्य गर्भ की शुद्धि और माता को श्रेष्ठ चिंतन करने की प्रेरणा प्रदान करना होता है। उल्लेखनीय है कि गर्भ में चौथे माह के बाद शिशु के अंग-प्रत्यंग, हृदय आदि बन जाते हैं और उनमें चेतना आने लगती है, जिससे बच्चे में जाग्रत इच्छाएं माता के हृदय में प्रकट होने लगती हैं। इस समय गर्भस्थ शिशु शिक्षण योग्य बनने लगता है। उसके मन और बुद्धि में नई चेतना-शक्ति जाग्रत होने लगती है। ऐसे में जो प्रभावशाली अच्छे संस्कार डाले जाते हैं, उनका शिशु के मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि गर्भस्थ शिशु बहुत ही संवेदनशील होता है। सती मदालसा के बारे में कहा जाता है कि वह अपने बच्चे के गुण, कर्म और स्वभाव की पूर्व घोषणा कर देती थी, फिर उसी प्रकार निरंतर चिंतन, क्रिया-कलाप, रहन-सहन, आहार-विहार और बर्ताव अपनाती थी, जिससे बच्चा उसी मनोभूमि में ढल जाता था, जैसाकि वह चाहती थी।

भक्त प्रहलाद की माता कयाधू को देवर्षि नारद भगवद् भक्ति के उपदेश दिया करते थे, जो प्रहलाद ने गर्भ में ही सुने थे। व्यास पुत्र शुकदेव ने अपनी मां के गर्भ में सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अर्जुन ने अपनी गर्भवती पत्नी सुभद्रा को चक्रव्यूह वेधन की जो शिक्षा दी थी, वह सब गर्भस्थ शिशु अभिमन्यु ने सीख ली थी। उसी शिक्षा के आधार पर 14 वर्ष की आयु में ही अभिमन्यु ने अकेले 8 महारथियों से महाभारत युद्ध कर चक्रव्यूह वेधन किया।

शास्त्र वर्णित गूलर आदि वनस्पति द्वारा पति को गर्भिणी पत्नी के सीमंत (मांग) का **ॐ भूर्विनयामि, ॐ भुवर्विनयामि, ॐ स्वर्विनयामि** पढ़ते हुए और पृथक् करणादि क्रियाएं करते हुए निम्न मंत्रोच्चारण करना चाहिए–

येनादिते सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय।
तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि॥

अर्थात् जिस प्रकार देवमाता अदिति का सीमंतोन्नयन प्रजापति ने किया था, उसी प्रकार मैं इस गर्भिणी का सीमंतोन्नयन करके इसके पुत्र को जरावस्थापर्यंत दीर्घजीवी करता हूं।

संस्कार के अंत में वृद्धा ब्राह्मणियों द्वारा पत्नि को आशीर्वाद दिलवाएं।

सीमंतोन्नयन संस्कार में पर्याप्त घी मिली खिचड़ी खिलाने का विधान है। इसका उल्लेख **गोभिल गृह्यसूत्र** में इस प्रकार किया गया है–

किं पश्यस्सीत्युक्त्वा प्रजामिति वाचयेत् तं सा स्वयं
भुञ्जीत वीरसूर्जीवपत्नीति ब्राह्मण्यो मंगलाभिर्वाग्भि पासीरन्। *–गोभिल गृह्यसूत्र 2/7/9-12*

अर्थात् यह पूछने पर कि क्या देखती हो, तो स्त्री कहे मैं संतान देखती हूं। उस खिचड़ी का खुद सेवन करे। इस संस्कार के समय उपस्थित स्त्रियां उसे आशीर्वाद देते हुए कहें कि तू जीवित संतान उत्पन्न करने वाली हो। तू चिरकाल तक सौभाग्यवती बनी रहे।

14. नामकरण संस्कार क्यों?

नामकरण संस्कार के संबंध में *स्मृति संग्रह* में लिखा है–

आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहृतेस्तथा।
नामकर्मफलं त्वेतत् समुद्दिष्टं मनीषिभिः॥

अर्थात् नामकरण संस्कार से आयु तथा तेज की वृद्धि होती है एवं लौकिक व्यवहार में नाम की प्रसिद्धि से व्यक्ति का अलग अस्तित्त्व बनता है।

इस संस्कार को प्रायः दस दिन के सूतक की निवृत्ति के बाद ही किया जाता है। **पाराशर गृह्यसूत्र** में लिखा है–**दशम्यामुत्थाप्य पिता नाम करोति**। कहीं-कहीं जन्म के दसवें दिन सूतिका का शुद्धिकरण यज्ञ द्वारा करा कर भी संस्कार संपन्न किया जाता है। कहीं-कहीं 100वें दिन या एक वर्ष बीत जाने के बाद नामकरण करने की विधि प्रचलित है। **गोभिल गृह्यसूत्रकार** के अनुसार–**जननादृशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामधेयकरणाम्**। इस संस्कार में बच्चे को शहद चटाकर शालीनता पूर्वक मधुर भाषण कर, सूर्य दर्शन कराया जाता है और कामना की जाती है कि बच्चा सूर्य की प्रखरता-तेजस्विता धारण करे, इसके साथ ही भूमि को नमन कर देव संस्कृति के प्रति श्रद्धापूर्वक समर्पण किया जाता है। शिशु का नया नाम लेकर सबके द्वारा उसके चिरंजीवी, धर्मशील, स्वस्थ एवं समृद्ध होने की कामना की जाती है।

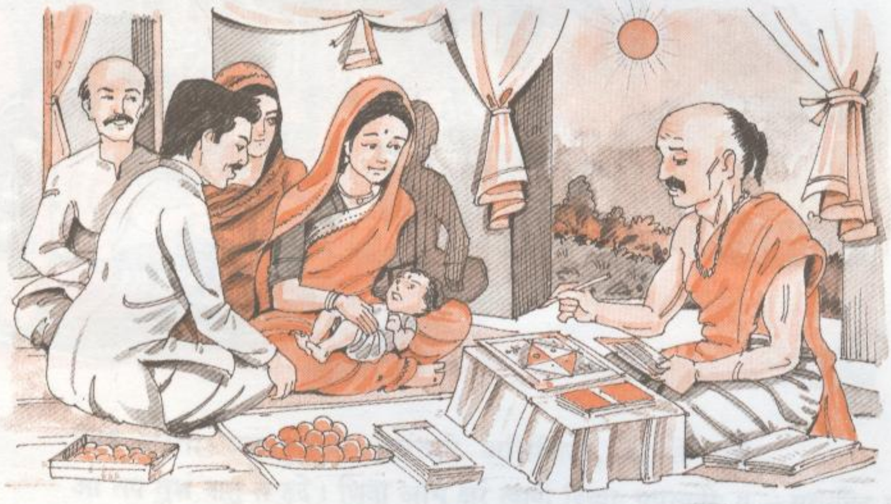

पहले गुण प्रधान नाम द्वारा या महापुरुषों, भगवान् आदि के नाम पर रखे नाम द्वारा यह प्रेरणा दी जाती थी कि शिशु जीवन-भर उन्हीं की तरह बनने को प्रयत्नशील रहे। मनोवैज्ञानिक तथ्य यह है कि जिस तरह के नाम से व्यक्ति को पुकारा जाता है, उसे उसी प्रकार के गुणों की अनुभूति होती है। जब घटिया

नाम से पुकारा जाएगा, तो व्यक्ति के मन में हीनता के ही भाव जागेंगे। अतः नाम की सार्थकता को समझते हुए ऐसा ही नाम रखना चाहिए, जो शिशु को प्रोत्साहित करने वाला एवं गौरव अनुभव कराने वाला हो।

नामकरण के तीन आधार माने गए हैं। पहला, जिस नक्षत्र में शिशु का जन्म होता है, उस नक्षत्र की पहचान रहे। इसलिए नाम नक्षत्र के लिए नियत अक्षर से शुरू होना चाहिए, ताकि नाम से जन्म नक्षत्र का पता चले और ज्योतिषीय राशिफल भी समझा जा सके। मूलरूप से नामों की वैज्ञानिकता का यही एक दर्शन है। दूसरा यह है कि नाम आपको जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायक बने और तीसरा यह कि नाम से आपके जातिनाम, वंश, गोत्र आदि की जानकारी हो जाए। ब्राह्मणों के नाम के अंत में शर्मा, क्षत्रियों के वर्मा, वणिक के गुप्ता और अन्य वर्णों के लिए दास शब्द लगाया जाता है।

15. निष्क्रमण संस्कार क्यों?

निष्क्रमण का अर्थ है–बाहर निकालना। बच्चे को पहली बार जब घर से बाहर निकाला जाता है, जैसे माता-पिता के यात्रादि पर जाने के समय निष्क्रमण संस्कार किया जाता है।

इस संस्कार का फल विद्वानों द्वारा शिशु के स्वास्थ्य और आयु की वृद्धि करना बताया है–

निष्क्रमणादायुषो वृद्धिरप्युद्दिष्टा मनीषिभिः।

जन्म के चौथे मास में निष्क्रमण संस्कार होता है। जब बच्चे का ज्ञान और कर्मेन्द्रियां सशक्त होकर धूप, वायु आदि को सहने योग्य बन जाती हैं। सूर्य तथा चंद्रादि देवताओं का पूजन करके बच्चे को सूर्य, चंद्र आदि के दर्शन कराना इस संस्कार की मुख्य प्रक्रिया है। चूंकि बच्चे का शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश से बनता है, इसलिए बच्चे का पिता इस संस्कार के अंतर्गत आकाश आदि पंचभूतों के अधिष्ठाता देवताओं से बच्चे के कल्याण की कामना करता है–

शिवे तेस्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ, शं ते सूर्य
आ तप तुशं वातु ते हृदे। शिवा अभि क्षरं त्वापो दिव्याः पयस्वतीः॥ *–अथर्ववेद सं. 8/2/14*

अर्थात् हे बालक! तेरे निष्क्रमण के समय द्युलोक तथा पृथिवीलोक कल्याणकारी सुखद एवं शोभास्पद हों। सूर्य तेरे लिए कल्याणकारी प्रकाश करे। तेरे हृदय में स्वच्छ कल्याणकारी वायु का संचरण हो। दिव्य जल वाली गंगा-यमुना आदि नदियां तेरे लिए निर्मल स्वादिष्ट जल का वहन करें।

16. अन्नप्राशन संस्कार क्यों?

माता के गर्भ में मलिन भोजन के जो दोष शिशु में आ जाते हैं, उनके निवारण और शिशु को शुद्ध भोजन कराने की प्रक्रिया को अन्नप्राशन संस्कार कहा जाता है–

अन्नाशनान्मातृगर्भे मलाशाद्यपि शुध्यति।

शिशु को जब 6-7 माह की अवस्था में पेय पदार्थ, दूध आदि के अतिरिक्त प्रथम बार यज्ञ आदि करके अन्न खिलाना प्रारंभ किया जाता है, तो यह कार्य अन्नप्राशन संस्कार के नाम से जाना जाता है। इस संस्कार का उद्देश्य यह होता है कि शिशु सुसंस्कारी अन्न ग्रहण करे–

आहारशुद्धौ-सत्त्वशुद्धिः। *–छान्दोग्य उपनिषद् 7/26/2*

अर्थात् शुद्ध आहार से शरीर में सत्त्व गुण की वृद्धि होती है।

6-7 माह के शिशु के दांत निकलने लगते हैं और पाचन क्रिया प्रबल होने लगती है, ऐसे में जैसा अन्न खाना वह प्रारंभ करता है, उसी के अनुरूप उसका तन-मन बनता है। मनुष्य के विचार, भावना, आकांक्षा एवं अंतरात्मा बहुत कुछ अन्न पर ही निर्भर रहती है। अन्न से ही जीवन तत्त्व मिलते हैं, जिससे रक्त, मांस आदि बनकर जीवन धारण किए रहने की क्षमता उत्पन्न होती है। अन्न ही मनुष्य का स्वाभाविक भोजन है, उसे भगवान् का कृपा-प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिए।

शास्त्रों में देवों को खाद्य पदार्थ निवेदित करके अन्न खिलाने का विधान बताया गया है। इस संस्कार में शुभ मुहूर्त में देवताओं का पूजन करने के पश्चात् माता-पिता चांदी के चम्मच से खीर आदि पवित्र और पुष्टिकारक अन्न शिशु को चटाते हैं और निम्न मंत्र बोलते हैं–

शिवौ ते स्तां व्रीहियवाववलासावदोमधौ।
एतौ यक्ष्मं विबाधेते एतौ मुंचतो अंहसः॥ —*अथर्ववेद 8/2/18*

अर्थात् हे बालक! जौ और चावल तुम्हारे लिए बलदायक तथा पुष्टिकारक हों, क्योंकि ये दोनों वस्तुएं यक्ष्मा नाशक हैं तथा देवान्न होने से पाप नाशक हैं।

इस संदर्भ में महाभारत में एक रोचक कथा आती है–एक दिन भीष्म पितामह पांडवों को कोई उपदेश दे रहे थे कि अचानक द्रौपदी को हंसी आ गई। द्रौपदी के इस व्यवहार से पितामह को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने द्रौपदी से हंसने का कारण पूछा। द्रौपदी ने विनम्रता से कहा– "आपके उपदेशों में धर्म का मर्म छिपा है पितामह। आप हमें कितनी अच्छी-अच्छी ज्ञान की बातें बता रहे हैं। यह सब सुनकर कौरवों की उस सभा की याद हो आई, जिसमें वे मेरे वस्त्र उतारने का प्रयास कर रहे थे। तब मैं चीख-चीखकर न्याय की भीख मांग रही थी, लेकिन आप वहां पर होने के बाद भी मौन रहकर उन अधर्मियों का प्रतिवाद नहीं कर रहे थे। आप जैसे धर्मात्मा उस समय क्यों चुप रहे? दुर्योधन को क्यों नहीं समझाया, यही सोचकर मुझे हंसी आ गई।"

इस पर भीष्म पितामह गंभीर होकर बोले–"बेटी, उस समय मैं दुर्योधन का अन्न खाता था। उसी से मेरा रक्त बनता था। जैसा कुत्सित स्वभाव दुर्योधन का है, वही असर उसका दिया अन्न खाने से मेरे मन और बुद्धि पर पड़ा, किंतु अब अर्जुन के बाणों ने पाप के अन्न से बने रक्त को मेरे तन से बाहर निकाल दिया है और मेरी भावनाएं शुद्ध हो गई हैं। इसीलिए अब मैं वही कह रहा हूं, जो धर्म के अनुकूल है।"

17. चूड़ाकर्म (मुंडन) संस्कार क्यों?

इस संस्कार में शिशु के सिर के बाल पहली बार उस्तरे से उतारे जाते हैं। जन्म के पश्चात् प्रथम वर्ष के अंत तथा तीसरे वर्ष की समाप्ति के पूर्व मुंडन संस्कार कराना आमतौर पर प्रचलित है। क्योंकि हिंदू मान्यता के अनुसार एक वर्ष से कम की उम्र में मुंडन संस्कार करने से शिशु की सेहत पर बुरा प्रभाव पड़ता है और अमंगल होने की संभावना रहती है। फिर भी कुल परंपरा के अनुसार पांचवें या सातवें वर्ष में भी इस संस्कार को करने का विधान है।

मान्यता यह है कि शिशु के मस्तिष्क को पुष्ट करने, बुद्धि में वृद्धि करने तथा गर्भगत मलिन संस्कारों को निकालकर मानवतावादी आदर्शों को प्रतिष्ठापित करने हेतु चूड़ाकर्म संस्कार किया जाता है। इसका फल बुद्धि, बल, आयु और तेज की वृद्धि करना है। इसे किसी देव स्थल या तीर्थ स्थान पर इसलिए कराया

जाता है, ताकि वहां के दिव्य वातावरण का भी लाभ शिशु को मिले तथा उतारे गए बालों के साथ बच्चे के मन में कुसंस्कारों का शमन हो सके और साथ ही सुसंस्कारों की स्थापना हो सके।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार–

तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोकाय स्वस्तये। –*आश्वलायन गृह्यसूत्र 1/17/12*

अर्थात् चूड़ाकर्म से दीर्घ आयु प्राप्त होती है। शिशु सुंदर तथा कल्याणकारी कार्यों की ओर प्रवृत्त होने वाला बनता है।

वेदों में चूड़ाकर्म संस्कार का विस्तार से उल्लेख मिलता है। **यजुर्वेद** में लिखा है–

निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाध्याय प्रजननाय
रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय॥ *–यजुर्वेद 3/63*

अर्थात् हे बालक! मैं तेरी दीर्घायु के लिए, तुझे अन्न-ग्रहण करने में समर्थ बनाने के लिए, उत्पादन शक्ति प्राप्ति के लिए, ऐश्वर्य वृद्धि के लिए, सुंदर संतान के लिए एवं बल तथा पराक्रम प्राप्ति के योग्य होने के लिए तेरा (चूड़ाकर्म (मुंडन)) संस्कार करता हूं।

उल्लेखनीय है कि चूड़ाकर्म वस्तुतः मस्तिष्क की पूजा अभिवंदना है। मस्तिष्क का सर्वश्रेष्ठ उपयोग करना ही बुद्धिमत्ता है। शुभ विचारों को धारण करने वाला व्यक्ति परोपकार या पुण्य लाभ पाता है और अशुभ विचारों को मन में भरे रहने वाला व्यक्ति पापी बनकर ईश्वरीय दंड और कोप का भागी बनता है। यहां तक कि अपनी जीवन प्रक्रिया को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है। अतः मस्तिष्क का सार्थक सदुपयोग ही चूड़ाकर्म का वास्तविक उद्देश्य है।

18. शिखा (चोटी) रखने और उसमें गांठ बांधने की प्रथा क्यों?

हिंदू धर्म के साथ शिखा का अटूट संबंध होने के कारण चोटी रखने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। शिखा का महत्त्व भारतीय संस्कृति में अंकुश के समान है। यह हमारे ऊपर आदर्श और सिद्धांतों का अंकुश है। इससे मस्तिष्क में पवित्र भाव उत्पन्न होते हैं।

उल्लेखनीय है कि हमारे लघु और दीर्घ मस्तिष्कों को जोड़ने वाले केंद्र को 'अधिपति' मर्मस्थल कहते हैं, जो मस्तिष्क का हृदय कहलाता है। यहीं पर ब्रह्मरंध्र, द्विदलीय आज्ञाचक्र और पीनियल ग्लैंड से संपर्क जोड़ने वाली नाड़ियां आकर मिलती हैं, जो बच्चे की चिंतन शक्ति का विकास करती हैं। इस स्थान पर जो बालों का भंवर होता है, उसकी जड़ें उन चेतना केंद्रों तक चली गई हैं, जिनकी बदौलत हम बुद्धिमान् व मनस्वी बनते हैं। ऐसे मर्मस्थल की पहचान और सुरक्षा के लिए ही हमारे ऋषियों ने उस स्थान पर चोटी (शिखा) रखने का विधान बनाया है।

98. छोछक और भात देने की परंपरा क्यों?

विधिपूर्वक विवाहित पुत्री के पुत्र होने पर उस बच्चे के लिए मामा और नाना की ओर से वस्त्र, आभूषण आदि भेंट किए जाते हैं। इस अवसर पर लड़की, दामाद तथा ससुराल के अन्य मान्य लोगों सास-ससुर आदि के लिए भी वस्त्र और भेंट के रूप में धन आदि दिया जाता है। समाज में इस परंपरा को 'छोछक' के नाम से जाना जाता है। यह परंपरा बच्चे के नामकरण वाले दिन पूरी की जाती है। अधिकांश घरों में संतान चाहे पुत्र हो या पुत्री माता के मायके वाले छोछक अवश्य देते हैं।

ठीक इसी प्रकार की एक परंपरा पुत्री के बेटे या बेटी के विवाह के समय मामा और नाना की ओर से निबाही जाती है। इस परंपरा को 'भात' देना कहते हैं। भात देने में कन्या के मामा-नाना कन्या के लिए तो वस्त्र आभूषण तथा नकद रकम देते ही हैं, ससुराल पक्ष के अन्य लोगों के लिए भी वस्त्र एवं भेंट आदि दी जाती है। इसी प्रकार भांजे की शादी में भी भात दिया जाता है।

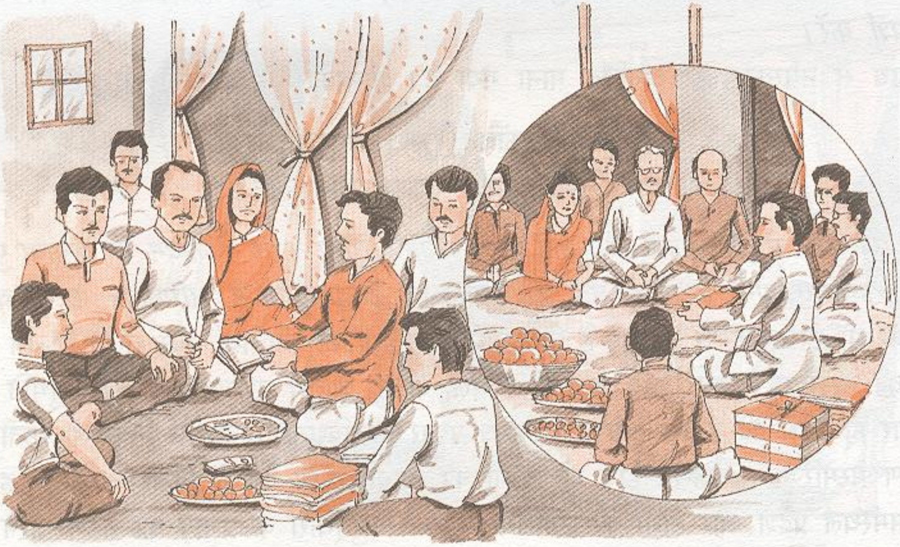

भात के अतिरिक्त मामा आदि भांजी या भांजे की शादी में अनेक महत्त्वपूर्ण रस्में निभाते हैं। जैसे भांजी को कुंडल पहनाना एवं बारात आने से पहले की रात्रि में प्रातः चार बजे कन्या को स्नान कराना आदि।

जहां तक छोछक एवं भात की परंपरा के कारण का प्रश्न है, तो शास्त्र के अनुसार इसके मूल में पिता की संपत्ति में से पुत्री को हिस्सा देने की भावना ही इसका प्रधान कारण है।

पुरुष प्रधान भारतीय समाज में एक लंबे समय तक पिता की संपत्ति पर पुत्र का अधिकार माना जाता रहा है। कन्या का विवाह कम उम्र में कर दिए जाने के कारण उसके जीवनयापन का भार पति पर होता है। अतः कन्या को पिता की संपत्ति से सीधे-सीधे हिस्सा न देकर उसके विवाह में धन लगाने का पिता और भाइयों का कर्त्तव्य निर्धारित किया गया है। मनु ने व्यवस्था दी है कि–

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। —मनुस्मृति 9/130

अर्थात् जैसे आत्मा और पुत्र समान हैं, वैसे ही पुत्र और पुत्री समान हैं।

अतः मनु ने दूसरी व्यवस्था दी है कि पिता की संपत्ति के बंटवारे का पुत्रों की तरह पुत्री को भी हिस्सा दिया जाना चाहिए—

स्वे स्वेभ्योऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक्।
स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सवः ॥ —मनुस्मृति 9/118

अर्थात् कन्या (अविवाहित बहनों) को सभी भाई अपने भागों में से अलग दें। जो भाई बहन के विवाह के लिए अपने धन का चौथा भाग नहीं देते। वे पतित होते हैं।

आगे चलकर मनु ने बहन की कुमारी कन्याओं के लिए भी भाइयों द्वारा प्रीतिपूर्वक धन भाग देने की बात कही है—

यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः।
मातामह्या धनात्किंचित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥ —मनुस्मृति 9/193

अर्थात् बहन की कुमारी कन्याओं को भी नानी के धन में से अपनी प्रसन्नता से उनके संतोष के लिए कुछ धन देना चाहिए।

ज्ञातव्य है कि प्राचीन काल में कन्या का विवाह बाल्यावस्था में ही कर दिया जाता था। अधिकांश परिवारों में तब तक पिता की संपत्ति का बंटवारा नहीं होता था। अतः कन्या के पुत्र-पुत्री होने के अवसर तक भाइयों के समर्थ हो जाने के कारण नानी की संपत्ति में से बहन के बच्चों के लिए धन देने की व्यवस्था बड़ी स्वाभाविक थी।

बहन-भाई यूं भी एक ही पिता की संतान होने के कारण उनमें आत्मीयता स्वाभाविक है, अतः बहन पर खर्चे का समय आने पर भाई द्वारा उसके सहयोग की भावना भी इस कार्य में निहित है। विवाह-शादी जैसे अधिक खर्च के मौके पर बहन अपने आपको अकेली न समझे, उसे अपने मायके वालों से धैर्य और साहस मिलता रहे। इसी भावना से भात और छोछक की परंपरा पुराने समय से अब तक लगातार चली आ रही है।

99. गौ सेवा का धार्मिक महत्त्व क्यों?

हिंदू धर्म में गाय को देवता और माता के समान मानकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करना मनुष्य का मुख्य धर्म माना गया है, क्योंकि उसके शरीर में सभी देवता निवास करते हैं। कोई भी धार्मिक कृत्य ऐसा नहीं है, जिसमें गौ की आवश्यकता नहीं हो। फिर चाहे वह यज्ञ हो, षोडश संस्कार हों या कोई अन्य आयोजन हो।

महर्षि वसिष्ठ का कामधेनु के लिए प्राणों की बाजी लगाना, महर्षि च्यवन का अपने शरीर के बदले नहुष का चक्रवर्ती राज्य ठुकरा कर एक गाय का मूल्य निश्चित करना जैसे प्रसंग यही दर्शाते हैं कि गाय से बढ़कर उपकार करने वाली और कोई वस्तु संसार में नहीं है। यह माता के समान मानव जाति का उपकार करने वाली, दीर्घायु और निरोगता प्रदान करने वाली है। इसीलिए शास्त्र में कहा गया है–**गावो विश्वस्य मातरः।** अर्थात् गाय विश्व की माता ही है।

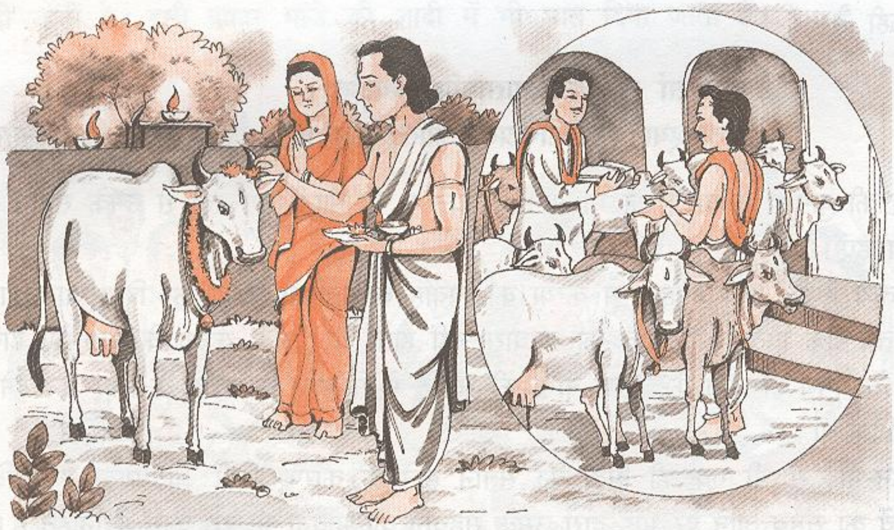

अग्निपुराण में कहा गया है कि गायें परम पवित्र और मांगलिक हैं। गाय का गोबर और मूत्र दरिद्रता दूर करता है। उन्हें खुजलाना, नहलाना, पानी पिलाना, पुण्यदायक है। गोमूत्र, गोबर, गो दुग्ध, गो दधि, गो घृत, कुशौदक–इनका मिश्रण अर्थात् पंचगव्य सभी अशुभ अनिष्टों को दूर करता है। गो ग्रास देने वाला सद्गति प्राप्त करता है। गो दान करने से समस्त कुल का उद्धार होता है। गो के श्वास से भूमि पवित्र होती है। गाय के स्पर्श से पाप नष्ट होते हैं। पंचगव्य पीने से पतित का भी उद्धार होता है।

वेद में कहा गया है–

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां। स्वसा आदित्यानां अमृतस्य नाभिः। –*अथर्ववेद*

अर्थात् गाय रुद्रों की माता है, वसुओं की पुत्री है, सूर्य की बहन है और घृत रूप अमृत का केंद्र है।

मार्कण्डेयपुराण में कहा गया है कि विश्व का कल्याण गाय पर आधारित है। गाय की पीठ–ऋग्वेद,

धड़–यजुर्वेद, मुख–सामवेद, ग्रीवा–इष्टापूर्ति, सत्कर्म, रोम साधु सूक्त हैं। गोबर और गोमूत्र में शांति और पुष्टि है। जहां गाय रहती है, वहां पुण्य क्षीण नहीं होते। वह जीवन को धारण कराती है। स्वाहा, स्वधा, वषट और हंतकार–यह चार गाय के धन हैं। इस गाय से सबकी तृप्ति होती है।

विष्णुस्मृति में कहा गया है कि गौओं के निवास की भूमि पवित्र होती है। गौएं पवित्र व मंगलमय हैं। उनसे समस्त लोक का कल्याण है। गायों से यज्ञ सफल होते हैं। उनकी सेवा से पाप नष्ट होते हैं। गौओं के बाड़े में तीर्थों का निवास है। उनकी रज से बुद्धि और संपदा बढ़ती है। उन्हें प्रणाम करने से पुण्य मिलता है।

स्कंदपुराण में कहा गया है कि गौओं के गोबर से घर-आंगन और देवमंदिर भी पवित्र हो जाते हैं।

अथर्ववेद में कहा गया है कि गौओं के दूध से निर्बल मनुष्य बलवान और हृष्ट-पुष्ट होता है तथा फीका और निस्तेज मनुष्य तेजस्वी बनता है।

गीता में श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है कि गायों में कामधेनु मैं ही हूं।

महाभारत, आश्व. में कहा गया है कि दान में दी हुई गौ अपने विभिन्न गुणों द्वारा कामधेनु बन कर परलोक में दाता के पास पहुंचती है। वह अपने कर्मों से बंधकर घोर अंधकार पूर्ण नरक में गिरते हुए मनुष्य का उसी प्रकार उद्धार कर देती है, जैसे वायु के सहारे से चलती हुई नाव मनुष्य को महासागर में डूबने से बचाती है। जैसे मंत्र के साथ दी हुई औषधि प्रयोग करते ही मनुष्य के रोगों का नाश कर देती है, उसी प्रकार सुपात्र को दी हुई कपिला गौ मनुष्य के सब पापों का तत्काल नष्ट कर डालती है।

गोदान क्यों?

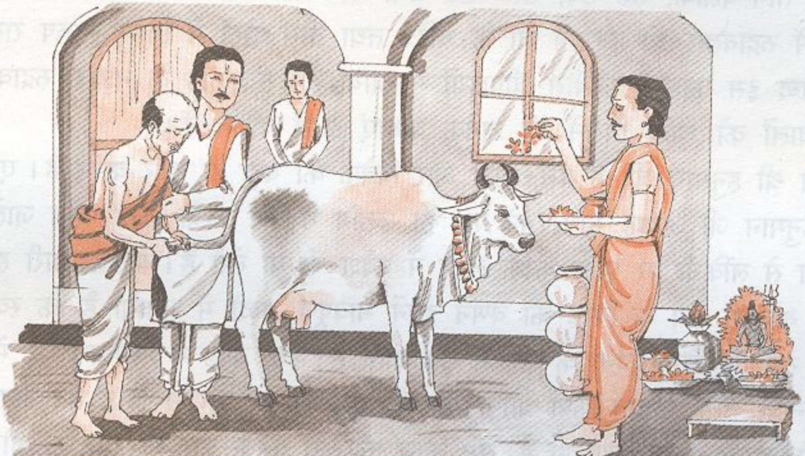

महाभारत, कूर्मपुराण, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि अनेक ग्रंथों में कहा गया है कि गोदान करने वाले मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर सुखपूर्वक जीवन जीते हैं और मृत्यु के बाद स्वर्ग जाते हैं। ब्राह्मण को गाय देने के पीछे मान्यता यही है कि जब प्राणी मरकर स्वर्ग जाता है, तब उसकी राह में वैतरणी नदी पड़ती है। दान में दी हुई गाय की पूंछ पकड़कर प्राणी वैतरणी को पार कर स्वर्ग पहुंच जाता है।

100. सुंदरकांड का धार्मिक महत्त्व क्यों?

हिंदू धर्म के पूज्य ग्रंथ श्रीरामचरित मानस में रामकथा विस्तार से वर्णित की गई है। इसके सात खंडों में सुंदरकांड का महत्त्व सर्वाधिक माना गया है। सुंदरकांड के प्रति लोगों का अधिक आकर्षण होने का मुख्य कारण यह है कि यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। इसीलिए आपने देखा होगा कि पूरी रामायण का पाठ कराने की अपेक्षा अधिकांश श्रद्धालु शुभ अवसरों पर सुंदरकांड का पाठ कराते रहते हैं।

सुंदरकांड के अंतिम दोहे में कहा गया है–

सकल सुमंगल दायक, रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलजान॥ *–श्रीरामचरितमानस, सुंदरकांड 60*

अर्थात् श्री रघुनाथजी का गुणगान संपूर्ण सुंदर मंगलों का यानी सभी लौकिक एवं पारलौकिक मंगलों को देने वाला है, जो इसे आदर सहित सुनेंगे, वे बिना किसी जहाज (अन्य साधन) के ही भवसागर को तर जाएंगे।

श्रीरामचरितमानस के सात कांडों को सात मोक्षपुरी यथा–अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवंतिका पुरी, द्वारावती को सप्तेता मोक्षदायिका बताया जाता है। इस प्रकार सुंदरकांड पांचवी मोक्षपुरी कांची है जिसके दो भाग हैं–शिव कांची व विष्णु कांची।

सुंदरकांड श्रीरामचरितमानस रूप भगवान् श्रीराम के शब्द विग्रह की सुंदर ग्रीवा (गर्दन/गला) है।

सुंदरकांड में तीन श्लोक, छह छंद, साठ दोहे तथा पांच सौ छब्बीस चौपाइयां हैं। साठ दोहों में से प्रथम तीस दोहों में रुद्रावतार श्री हनुमान जी के चरित्र तथा तीस दोहों में विष्णु स्वरूप राम के गुणों का वर्णन है। सुंदर शब्द इस कांड में चौबीस चौपाइयों में आया है। सुंदरकांड के नायक रुद्रावतार श्रीहनुमान हैं। अशांत मन वालों को शांति मिलने की अनेक कथाएं इसमें वर्णित हैं।

इसमें रामदूत श्री हनुमान जी के बल, बुद्धि और विवेक का बड़ा ही सुंदर वर्णन है। एक ओर श्रीराम की कृपा पाकर हनुमान जी अथाह सागर को एक ही छलांग में पार करके लंका पहुंच जाते हैं, तो दूसरी ओर बड़ी कुशलता से लंकिनी पर प्रहार करके लंका में प्रवेश भी पा लेते हैं। बालब्रह्मचारी हनुमान ने विरह विदग्धा मां सीता को श्री राम के विरह का वर्णन इतने भावपूर्ण शब्दों में सुनाया है कि स्वयं सीता अपने विरह को भूलकर राम की विरह-वेदना के दुख में डूब जाती हैं। इसी कांड में विभीषण को भेद नीति, रावण को भेद और दंडनीति तथा भगवत कृपा प्राप्ति का मंत्र भी हनुमान जी ने दिया है। अंततः पवनसुत ने सीताजी का आशीर्वाद तो प्राप्त किया ही है, राम काज को पूरा करके प्रभु श्री राम को भी विरह से मुक्त किया है और उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित भी किया है। इस प्रकार सुंदरकांड नाम के साथ-साथ इसकी कथा भी अति सुंदर है। आध्यात्मिक अर्थों में इस कांड की कथा के बड़े गंभीर और साधना मार्ग के उत्कृष्ट निर्देशन हैं। अतः सुंदरकांड आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक सभी दृष्टियों से बड़ा ही मनोहारी कांड है।

धार्मिक प्रवृत्ति के श्रद्धालु सुंदरकांड के पाठ को अमोघ अनुष्ठान मानते हैं। इसके माध्यम से वे श्रीहनुमानजी की कृपा की अनुभूति पाते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सुंदरकांड का पाठ करने से दरिद्रता एवं दुखों का दहन, अमंगलों, संकटों का निवारण तथा गृहस्थ जीवन में सभी सुखों की प्राप्ति होती है। पूर्ण लाभ प्राप्त करने के लिए भगवान् में पूर्ण श्रद्धा और विश्वास होना जरूरी है।

101. कर्म फल की मान्यता क्यों?

भारतीय संस्कृति में कर्मफल के सिद्धांत को विश्वासपूर्वक मान्यता प्रदान की गई है। मनुष्य को जो कुछ भी उसके जीवन में प्राप्त होता है, वह सब उसके कर्मों का ही फल है। मनुष्य के सुख-दुख, हानि-लाभ, जीत-हार, सुख-दुख के पीछे उसके कर्मों को आधार माना गया है।

कर्म फल भोगने की अनिवार्यता पर कहा गया है–

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ *–ब्रह्मवैवर्तपुराण 37/16*

अर्थात् करोड़ों कल्प वर्ष बीत जाने पर भी कर्मफल भोगे बिना, मनुष्य को कर्म से छुटकारा नहीं मिल सकता। वह शुभ या अशुभ जैसे भी कर्म करता है, उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है।

यही बात **शिवमहापुराण** और **महाभारत** के वनपर्व में भी कही गई है।

ऐहिकं प्राक्तनं वापि कर्म यद्चितं स्फुरत।
पौरुषोऽसौ परो यत्नो न कदाचन निष्फलः॥ *–योगवासिष्ठ 3/95/34*

अर्थात् पूर्वजन्म और इस जन्म के किए हुए कर्म, फल रूप में अवश्य प्रकट होते हैं। मनुष्य का किया हुआ यत्न, फल लाए बिना नहीं रहता है।

रामायण के अध्योध्याकांड में देवगुरु बृहस्पति देवराज इंद्र को भगवान् की कर्म-मर्यादा का बोध कराते हुए कहते हैं–

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥
काहु न कोउ सुख-दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सब भ्राता॥

अर्थात् विश्व में कर्म ही प्रधान है, जो जैसा करता है, उसे वैसा फल भोगना ही पड़ता है। दुनिया में कोई किसी को न दुख देने में समर्थ है, न सुख देने में। सभी व्यक्ति अपने किए हुए कर्मों का ही फल भोगते हैं।

कहा जाता है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों, ज्ञानी-ध्यानी, महाराजाधिराज, पराक्रमी, बड़े-बड़े सम्राट्, महापुरुषों, बलशाली व्यक्तियों को भी अपने-अपने कर्मों का फल भोगना पड़ा है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम को 14 वर्ष का वनवास मिला और उनकी पत्नी माता सीता का अपहरण हुआ। महाबलशाली भीम को रसोइया बनकर नौकरी करनी पड़ी। महाप्रतापी सम्राट् नल को अपनी प्राण प्यारी पत्नी दमयंती को वन में अकेला छोड़कर राजा ऋतुपर्ण का कोचवान बनना पड़ा। महाराजा हरिश्चन्द्र को श्मशान में चांडाल की चाकरी करनी पड़ी। महारानी द्रौपदी को सैरन्ध्री बनकर रानियों की सेवा करनी पड़ी। महाप्रतापी और गांडीवधारी अर्जुन को हिजड़ा बनकर विराट्राज की कन्या को नाचना सिखाना पड़ा।

102. पाप-पुण्य के बुरे और अच्छे फल भुगतने की धारणा क्यों?

शास्त्र में कहा है–**'पापकर्मेति दशधा।'** अर्थात् पाप कर्म दस प्रकार के होते हैं। हिंसा (हत्या), स्तेय (चोरी), व्यभिचार–ये शरीर से किए जाने वाले पाप हैं। झूठ बोलना (अनृत), कठोर वचन कहना (परुष) और चुगली करना–ये वाणी के पाप हैं। परपीड़न और हिंसा आदि का संकल्प करना, दूसरों के गुणों में भी अवगुणों को देखना और निर्दोष जनों के प्रति दुर्भावनापूर्ण दृष्टि (कुदृष्टि) रखना, ये मानस पापकर्म कहलाते हैं। इन कर्मों को करने से अपने को और दूसरे को कष्ट ही होता है। अतः ये कर्म हर हालत में दुखदायी ही हैं।

स्कंदपुराण में कहा गया है कि–

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥ *–स्कंदपुराण, केदार.1*

अठारह पुराणों में व्यासजी की दो ही बातें प्रधान हैं–परोपकार पुण्य है और दूसरों को पीड़ा पहुंचाना पाप है। यही पुराणों का सार है। प्रत्येक व्यक्ति को इसका मर्म समझकर आचरण करना चाहिए।

परहित सरस धर्म नहिं भाई। परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥ कहकर तुलसीदास ने इसी तथ्य को सरलता से समझाया है।

मार्कण्डेयपुराण *(कर्मफल)* **14/25** में कहा गया है कि पैर में कांटा लगने पर तो एक जगह पीड़ा होती है, पर पाप-कर्मों के फल से तो शरीर और मन में निरंतर शूल उत्पन्न होते रहते हैं।

पाराशरस्मृति में कहा गया है कि पाप कर्म बन पड़ने पर छिपाना नहीं चाहिए। छिपाने से वह बहुत बढ़ता है। यहां तक कि मनुष्य सात जन्मों तक कोढ़ी, दुखी, नपुंसक होता है। पाप छोटा हो या बड़ा, उसे किसी धर्मज्ञ से प्रकट अवश्य कर देना चाहिए। इस प्रकार उसे प्रकट कर देने से पाप उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे चिकित्सा करा लेने पर रोग नष्ट हो जाते हैं।

महाभारत वनपर्व 207/51 में कहा गया है कि जो मनुष्य पाप कर्म बन जाने पर सच्चे हृदय से पश्चाताप करता है, वह उस पाप से छूट जाता है तथा 'फिर कभी ऐसा नहीं करूंगा' ऐसा दृढ़ निश्चय कर लेने पर वह भविष्य में होने वाले दूसरे पाप से भी बच जाता है।

शिवपुराण 1/3/5 में कहा गया है कि पश्चाताप ही पापों की परम निष्कृति है। विद्वानों ने पश्चाताप से सब प्रकार के पापों की शुद्धि होना बताया है। पश्चाताप करने से जिसके पापों का शोधन न हो, उसके लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए।

पापों का प्रायश्चित्त न करने वाले मनुष्य नरक तो जाते ही हैं, अगले जन्मों में उनके शरीरों में उन पापों के लक्षण आदि भी प्रकट होते हैं। अतः पाप का निवारण करने को प्रायश्चित्त अवश्य कर लेना चाहिए।

स्वर्ग के द्वार पर भीड़ लगी थी। धर्मराज को छंटनी करनी थी कि किसे प्रवेश दें और किसे न दें। परीक्षा के लिए उन्होंने सभी को दो कागज दिए और एक में अपने पाप और दूसरे में पुण्य लिखने को

कहा। अधिकांश लोगों ने अपने पुण्य तो बढ़ा-चढ़ा कर लिखे, पर पाप छिपा लिए। कुछ आत्माएं ऐसी थीं, जिन्होंने अपने पापों को विस्तार से लिखा और प्रायश्चित्त पूछा। धर्मराज ने अंतःकरणों की क्षुद्रता और महानता जांची और पाप लिखने वालों को स्वर्ग में प्रवेश दे दिया।

पुण्य के अच्छे फल की मान्यता क्यों ?

जिन कर्मों से व्यक्ति और समाज की उन्नति होती है, उन्हें पुण्य कर्म कहते हैं। सभी शास्त्रों और गोस्वामी तुलसीदास ने परोपकार को सबसे बड़े धर्म के रूप में माना है–**परहित सरस धर्म नहिं भाई।** *अर्थात् परोपकार के समान महान् धर्म कोई अन्य नहीं है।*

द्रौपदी जमुना में स्नान कर रही थी। उसने एक साधु को स्नान करते देखा। हवा में उसकी पुरानी लंगोटी उड़कर पानी में बह गई। ऐसे में वह बाहर निकलकर घर कैसे जाए, सो झाड़ी में छिप गया। द्रौपदी स्थिति को समझ गई और उसने झाड़ी के पास जाकर अपनी साड़ी का एक तिहाई टुकड़ा फाड़कर लंगोट बनाने के लिए साधु को दे दिया। साधु ने कृतज्ञतापूर्वक अनुदान स्वीकार किया।

दुर्योधन की सभा में जब द्रौपदी की लाज उतारी जा रही थी। तब उसने भगवान् को पुकारा। भगवान् ने देखा कि द्रौपदी के हिस्से में एक पुण्य जमा है। साधु की लंगोटी वाला कपड़ा ब्याज समेत अनेक गुना हो गया है। भगवान् ने उसी को द्रौपदी तक पहुंचाकर उसकी लाज बचाई।

103. स्वर्ग-नरक की कल्पना का आधार क्या?

मृत्यु के उपरांत प्राणी को स्वर्ग या नरक प्राप्त होता है, इस बात को संसार के समस्त धर्म एक स्वर से स्वीकार करते हैं। इस प्रकार मनुष्य को मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच में स्वर्ग-नरक भोगना पड़ता है। इस संबंध में **गरुड़पुराण** में बताया गया है कि यमलोक में 'चित्रगुप्त' नामक देवता हर एक जीव के पाप-पुण्य का ब्यौरा लिखते रहते हैं। जब मनुष्य मर कर यमलोक में जाता है, तो उसी लेखे के आधार पर शुभ कर्मों के लिए स्वर्ग और दुष्कर्मों के लिए नरक में भेजा जाता है।

कहा जाता है कि स्वर्ग देवताओं की नगरी है, जहां सभी प्राणी सुख भोग करते हैं। इस नगरी का स्वामी इंद्र है। स्वर्ग का सुख इंद्रियों का सुख नहीं, वरन् अंतःकरण यानी मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का आनंद है, जो इंद्रिय सुख की अपेक्षा काफी ऊंचे दर्जे का माना गया है। धार्मिक ग्रंथों में कहा गया है कि–

सब प्राणियों पर दया करने वाले, पराये धन में आसक्ति न रखने वाले, दानवीर, मृदुभाषी, प्राणियों के प्रति प्रेम भाव रखने वाले, पराई स्त्रियों में सदा माता, बहन, पुत्री की छवि देखने वाले तथा जो अन्याय से धन नहीं कमाते, चोरी नहीं करते, अपने धन में संतुष्ट रहते हैं, असत्य भाषण नहीं करते, किसी से बैर नहीं करते, किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाते, चित्त में मित्रता का भाव रखते हैं और जो इंद्रियजित हैं, उन सभी को स्वर्ग का सुख मिलता है। सच तो यह है कि ऐसे प्राणियों के लिए धरती पर ही स्वर्ग है। इस संबंध में एक दृष्टांत लोक प्रचलित है–

एक बार विधाता ने घोषणा कर दी कि एक सप्ताह के लिए कर्मों का प्रतिबंध हटा दिया गया है, जो भी चाहे स्वर्ग आ सकता है। स्वर्ग के इच्छुक लोगों की लंबी कतार स्वर्गलोक के द्वार पर लगनी शुरू हो गई। एक व्यक्ति सर पर लकड़ियां लिए हुए घर की ओर जा रहा था तो विधाता ने विमान रोककर उससे पूछा–'क्यों भाई तुम्हें स्वर्ग जाने का समाचार नहीं मिला क्या?' 'सुना तो है, महाराज ! पर मुझे तो अपने हंसते हुए बच्चों की किलकारियों, प्यार देती पतिव्रता पत्नी, मिलकर काम करने वाले भाइयों और परस्पर सहयोग व मैत्री का व्यवहार करने वाले पड़ोसियों में ही स्वर्ग दिखाई देता है। फिर भला मैं इस स्वर्ग को छोड़कर कहां आकाश में मारा-मारा फिरूं।' वृद्ध ने संतोष की सांस लेते हुए कहा।

नरक में प्राणी को तरह-तरह के कष्ट मिलते हैं, इसलिए नरक जाने वालों को दुखों की अनुभूति होती है। यमलोक के पास ही सात नरक बताए गए हैं। इनके रूपों को बहुत ही भयंकर बताया गया है। धार्मिक ग्रंथों में कहा गया है कि कामी, पाखंडी, कृतघ्न, ब्राह्मणों के धन को हरने वाले, पराई स्त्री से संबंध बनाने वाले, पराए धन को हजम करने वाले, हिंसा करने वाले, अनाथ, दीन, रोगी और वृद्ध पर दया न करने वाले तथा छल-कपट करने वाले नरक का दुख भुगतते हैं। गीता में नरक के तीन द्वार–काम, क्रोध, लोभ बताए गए हैं।

देव, मानव स्वर्ग के अधिकारी होने पर भी परपीड़ा निवारण हेतु नरक स्वीकारते हैं। युधिष्ठिर को एक दिन का नरक मिला और 100 वर्षों का स्वर्ग। पहले क्या भुगतना है, पूछे जाने पर उन्होंने नरक पसंद किया। नरक में उनके शरीर से शीतल गंध आने लगी और नरकवासियों को राहत मिली। वे कहने लगे कि आप यहीं रहें। युधिष्ठिर ने अपना पुण्य नरकवासियों को दे स्वर्ग पहुंचा दिया। स्वयं उनका पाप ओढ़कर नरक में रहने लगे। नरक का वातावरण युधिष्ठिर के रहने से स्वर्ग जैसा बन गया।

104. माता-पिता की सेवा सबसे बड़ा धर्म क्यों?

हिंदू धर्म में माता-पिता की सेवा को सबसे बड़ी सेवा माना गया है। शास्त्र–मातृ देवो भव, पित्र देवो भव आदि सम्मानित वचनों से माता-पिता को देवताओं के समान पूजनीय मानते हैं। माता का स्थान तो पिता से अधिक माना गया है–जननी और जन्म-भूमि को तो स्वर्ग से भी श्रेष्ठ कहा गया है।

प्रत्यक्ष में माता और पिता के द्वारा ही संतान के शरीर का निर्माण होता है। अतः शरीर देने वाले सबसे पहले देवता माता-पिता ही हैं। माता संतान का पालन-पोषण करने के लिए नौ-दस मास तक कष्ट सहती है और अपने विचारों से संस्कार-संपन्न संतान को जन्म देती है, इसलिए माता-पिता संसार में सर्वाधिक पूजनीय हैं।

माता-पिता की इस सेवा के लिए ही हिंदू धर्म में पितृ-ऋण की व्यवस्था है। इस ऋण को चुकाए बिना अथवा माता की अनुमति के बिना पुत्र को गृहस्थ जीवन से विमुख होने की आज्ञा नहीं है। संन्यास ग्रहण करने के लिए भी इस ऋण से मुक्त होना आवश्यक है।

ज्ञान पाने की दृष्टि से यद्यपि गुरु का बड़ा महत्त्व है, लेकिन माता को बच्चे की पहली गुरु कहकर सम्मानित किया गया है। **मनुस्मृति** में स्पष्ट व्यवस्था दी गई है कि–

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ *–मनुस्मृति-2/145*

अर्थात् उपाध्यायों से दस गुना श्रेष्ठ आचार्य, आचार्य से सौ गुना श्रेष्ठ पिता और पिता से हजार गुना श्रेष्ठ माता गौरव से युक्त होती है।

इस श्रेष्ठता का कारण स्पष्ट करते हुए मनु लिखते हैं–

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥

–मनुस्मृति-2/227

अर्थात् प्राणियों की उत्पत्ति में माता-पिता को जो क्लेश सहन करना पड़ता है, उस क्लेश से वे (प्राणी) सौ वर्षों में भी निस्तार नहीं पा सकते। इसलिए मनु ने माता-पिता और गुरु इन तीन को सदा सेवा से प्रसन्न रखने के निर्देश दिए हैं। यह व्यवस्था जीवन के सत्य और लक्ष्य को पाने के लिए भी आवश्यक है–

इमं लोकं मातृभक्तया, पितृभक्तया तु मध्यमम्।
गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥

–मनुस्मृति-2/233

अर्थात् माता में भक्ति से इस लोक का, पिता में भक्ति से मध्य लोक का और गुरु में भक्ति से ब्रह्म लोक का सुख प्राप्त होता है। जिन पर इन तीनों की कृपा होती है, उनको सभी धर्मों का सम्मान मिलता है और जिन पर माता-पिता तथा गुरु की कृपा नहीं होती, उन्हें किसी धर्म के पालन से सम्मान नहीं मिलता। उनके सभी कर्म निष्फल होते हैं। अतः जब तक माता-पिता और गुरु जीवित रहें, तब तक उनकी सेवा ही करें और किसी अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। यही कर्तव्य है, यही साक्षात् धर्म है।

माता-पिता की महत्ता का उल्लेख **शिवपुराण** में यूं मिलता है–

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रकान्तिं च करोति च। तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम् ॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौंतार्थमाव्रजेत्। तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा ॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणकंजम्। अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः ॥
इदं संन्निहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्। पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम् ॥

–शिवपुराण, रुद्रसं.कु.खं. 19/39-42

अर्थात् जो पुत्र माता-पिता की पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता-पिता को घर पर छोड़कर तीर्थयात्रा के लिए जाता है, वह माता-पिता की हत्या से मिलने वाले पाप का भागी होता है, क्योंकि पुत्र के लिए माता-पिता के चरण-सरोज ही महान तीर्थ हैं। अन्य तीर्थ तो दूर जाने पर प्राप्त होते हैं, परंतु धर्म का साधन भूत यह तीर्थ तो पास में ही सुलभ है। पुत्र के लिए (माता-पिता) और स्त्री के लिए (पति) सुंदर तीर्थ घर में ही वर्तमान है।

शास्त्रों की इस प्रकार की आज्ञा पालन करने वाले पुत्र के रूप में श्रवण कुमार का नाम अमर है। भगवान् श्रीराम माता और पिता की आज्ञा मानकर ही एक आदर्श पुत्र के रूप में चौदह वर्ष तक वनवास में रहे। अतः शास्त्र और महापुरुषों के चरित्र से प्रेरणा लेकर संतान को सदैव माता-पिता की सेवा को ही सबसे ऊंचा स्थान देना चाहिए।

105. व्रत-उपवास का महत्त्व क्यों?

पुराणों में इस बात का विस्तार से उल्लेख मिलता है कि हमारे ऋषि-मुनि उपवास के द्वारा ही शरीर, मन एवं आत्मा की शुद्धि करते हुए अलौकिक शक्ति प्राप्त करते थे। वेद में कहा गया है–

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥ –*यजुर्वेद 19/30*

मनुष्य को उन्नत जीवन की योग्यता व्रत से प्राप्त होती है, जिसे दीक्षा कहते हैं। दीक्षा से दक्षिणा यानी जो कुछ किया जा रहा है, उसमें सफलता मिलती है। इससे श्रद्धा जागती है और श्रद्धा से सत्य की यानी जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति होती है, जो उसका अंतिम निष्कर्ष है।

आचरण की शुद्धता को कठिन परिस्थितियों में भी न छोड़ना, उसका निष्ठापूर्वक पालन करना ही व्रत कहलाता है। वस्तुतः विशेष संकल्प के साथ लक्ष्य सिद्धि के लिए किए जाने वाले कार्य का नाम व्रत है।

असंयमित जीवन जीने के कारण जो अशुद्धियां और अनियमितताएं आ जाती हैं, उनके निवारण का सफल उपाय व्रताचरण ही होता है। अन्न की मादकता के कारण शरीर में आलस्य आने लगता है, जिससे पूजा-उपासना से उत्पन्न आध्यात्मिक शक्ति नष्ट होने लगती है। व्रत से हमारा शरीर और मन शुद्ध बनता है, आत्मविश्वास बढ़ता है और संयम की वृत्ति का भी विकास होता है। आत्मविश्वास हमारी शक्तियों को बढ़ाता है और संयम से शक्तियों का व्यय घटता है। इस प्रकार व्रत से आत्मशोधन और शक्ति दोनों लाभ प्राप्त होते हैं।

इंद्रियों, विषय-वासना और मन पर काबू पाने के लिए उपवास एक अचूक साधन माना गया है। **गीता** में कहा गया है–**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।**

चिकित्सकों के मत में भी व्रत और उपवास रखने से अनेक शारीरिक-मानसिक बीमारियों में लाभ मिलता है। सप्ताह में एक दिन का व्रत करने से हमारे आंतरिक अंगों को विश्राम करने और सफाई करने का मौका मिलता है, जिससे शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा आयु बढ़ती है। इसके अलावा व्रतानुष्ठान द्वारा आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक त्रिविध कल्याण प्राप्त होता है।

उपवास का प्रयोजन शरीर का शोषण नहीं, अपितु लक्ष्य पाने का संकल्प जगाना है। महात्मा बुद्ध ने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए संकल्प किया कि इस आसन पर बैठे-बैठे मेरा शरीर भले ही सूख जाए, चमड़ी, हड्डी और मांस भले ही विनष्ट हो जाए, किंतु दुर्लभ बोधि को प्राप्त किए बिना यह शरीर इस आसन से विचलित नहीं होगा। इस दृढ़ संकल्प से ही वे बुद्धत्व को प्राप्त हुए।

106. मौन व्रत का विशेष महत्त्व क्यों?

आध्यांत्मिक उन्नति के लिए वाणी का शुद्ध होना परमावश्यक है। मौन से वाणी नियंत्रित एवं शुद्ध होती है। इसलिए हमारे शास्त्रों में मौन का विधान बनाया गया है। श्रावण मास की समाप्ति के बाद भाद्रपद प्रतिपदा से 16 दिनों तक इस व्रत के अनुष्ठान का विधान है। ऐसी मान्यता है कि मौन से सब कामनाएं पूर्ण होती हैं। ऐसा साधक शिवलोक को प्राप्त होता है। मौन के साथ श्रेष्ठ चिंतन, ईश्वर स्मरण आवश्यक है। शास्त्रकार ने मौन की गणना पांच तपों में की है–

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥ *–श्रीमद्भगवद्गीता 17/16*

अर्थात् मन की प्रसन्नता, सौम्य-स्वभाव, मौन, मनोनिग्रह और शुद्ध विचार ये मन के तप हैं।

इनमें मौन का स्थान मध्य में है। मन के परिष्कार तथा संयम के लिए मन की प्रसन्नता धारण की जाए, सौम्यता धारण की जाए तत्पश्चात् मौन का प्रयोग किया जाए। इसके प्रयोग से शुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं। मन का परिष्कार होकर चंचलता और व्यर्थ चिंतन से मुक्ति होती है।

चाणक्य नीति दर्पण में कहा गया है–

ये तु संवत्सरं पूर्णं नित्यं मौनेन भुंजते।
युगकोटिसहस्त्रैस्तु स्वर्गलोके महीयते॥ *–चाणक्य नीति 11/9*

अर्थात् जो मनुष्य प्रतिदिन पूरे संवत भर मौन रहकर भोजन करता है, वह दस हजार कोटि वर्ष तक स्वर्ग में पूजा जाता है।

मौन की महिमा अपार है। मौन से क्रोध का दमन, वाणी का नियंत्रण, शरीर बल, संकल्प बल एवं आत्मबल में वृद्धि, मन को शांति तथा मस्तिष्क को विश्राम मिलता है, जिससे आंतरिक शक्तियों का विकास होता है और ऊर्जा का क्षरण रुकता है। इसीलिए मौन को व्रत की संज्ञा दी गई है।

मौन के संबंध में महाभारत में एक कथा है। जब महाभारत का अंतिम श्लोक महर्षि वेदव्यास द्वारा बोला गया और गणेश जी द्वारा भोज पत्र पर लिखा जा चुका, तब महर्षि व्यास ने कहा–'विघ्नेश्वर धन्य है आपकी लेखनी ! महाभारत का सृजन तो वस्तुतः परमात्मा ने किया है, पर एक वस्तु आपकी लेखनी से भी अधिक विस्मयकारी है–वह है आपका मौन। इस अवधि में मैंने तो 15-20 लाख शब्द बोल डाले, परंतु आपके मुख से मैंने एक भी शब्द नहीं सुना।' इस पर गणेश जी ने मौन की व्याख्या करते हुए कहा–'बादनारायण, किसी दीपक में अधिक तेल होता है और किसी में कम, तेल का अक्षय भंडार किसी दीपक में नहीं होता। उसी प्रकार देव, मानव और दानव आदि जितने भी तनधारी जीव हैं, सबकी प्राण-शक्ति सीमित है, उसका पूर्णतम लाभ वही पा सकता है, जो संयम से इसका उपयोग करता है। संयम का प्रथम सोपान है–वाक् संयम। जो वाणी का संयम नहीं रखता, उसके अनावश्यक शब्द प्राणशक्ति को सोख डालते हैं। वाक्संयम से यह समस्त अनर्थपरंपरा दग्धबीज हो जाती है। इसीलिए मैं मौन का उपासक हूं।'

107. स्वस्थ जीवन के लिए प्राणायाम आवश्यक क्यों?

प्राण अर्थात् जीवनशक्ति (Vital Power) और उसका आयाम अर्थात् विस्तार, नियमन मिलकर प्राणायाम शब्द की रचना हुई है। प्राणायाम अष्टांगयोग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है जिसका शाब्दिक अर्थ है–प्राण का व्यायाम। महर्षि पतंजलि के मतानुसार–**तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः** *अर्थात् श्वासप्रश्वास की गति का विच्छेद करके प्राणवायु को सीने में भरने, भीतर रोककर रखने और उसे बाहर छोड़ने का नियमन करने के कार्य को प्राणायाम कहते हैं।*

शास्त्रकार प्राणायाम की महिमा इस प्रकार लिखते हैं–

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ *–मनुस्मृति*

अर्थात् जैसे अग्नि से तपाये हुए स्वर्ण, रजत आदि धातुओं के मल दूर हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम के अनुष्ठान से इंद्रियों में आ गए दोष, विकार आदि नष्ट हो जाते हैं और केवल इंद्रियों के ही नहीं, बल्कि देह, प्राण, मन के विकार भी नष्ट हो जाते हैं तथा ये सब साधक के वश में हो जाते हैं।

योग दर्शन के अनुसार–**ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्–2/52**

प्राणायाम के अभ्यास से विवेक (ज्ञान) रूपी प्रकाश पर पड़ा अज्ञान रूपी आवरण (पर्दा) हट जाता है।

योगचूड़ामणि में कहा गया है कि प्राणायाम में पाप जल जाते हैं। यह संसार समुद्र को पार करने के लिए महासेतुरूप है।

यों तो प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक साधना का मार्ग प्रशस्त करना है, फिर भी शारीरिक और मानसिक दृष्टिकोण से भी इसका काफी महत्त्व माना गया है। इससे शरीर को अतिरिक्त आंतरिक सामर्थ्य, बल एवं ऊर्जा प्राप्त होती है तथा मानसिक शांति मिलती है। मानसिक रोगों से मुक्ति प्राप्त होकर स्मरण शक्ति बढ़ती है। श्वास-प्रश्वास के नियमन से फेफड़े मजबूत होते हैं, जिससे रक्त शुद्ध होता है और शरीर निरोगी बनकर दीर्घायु प्राप्त होती है। प्राणायाम से जठराग्नि प्रदीप्त होती है, मन की चंचलता पर नियंत्रण होता है, इंद्रियों के विकारों से निवृत्ति होती है, चेहरे की कांति बढ़ती है, मोटापा दूर होता है और भूख-प्यास पर नियंत्रण होता है। इसके ऊंचे अभ्यास से आयु को बढ़ाना संभव है और इच्छामृत्यु को प्राप्त किया जा सकता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से प्राणायाम से शरीर के विभिन्न हिस्सों और अंगों पर दबाव पड़ता है, जिसके कारण उस क्षेत्र का रक्त संचार बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप उन अंगों की स्वस्थता बढ़ती है। प्राणायाम में ली गई गहरी सांस से मस्तिष्क से सारा दूषित खून बह जाता है और हृदय का शुद्ध रक्त उसे अधिक मात्रा में मिलता है। योग में उड्डियान बंध के प्रयोग से इतना अधिक शुद्ध रक्त मिलता है, जितना किसी श्वास संबंधी व्यायाम से नहीं। अतः प्राणायाम स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। इससे शरीर शुद्धि के अलावा मनोबल बढ़ता है। इसीलिए हमारे महर्षियों ने संध्यावंदन के साथ नित्य प्राणायाम का नियम बनाया है।

108. पर्वों और त्योहारों का महत्त्व क्यों?

पर्व और त्योहार देश की सभ्यता और संस्कृति के दर्पण कहे जाते हैं। हमारे तत्त्ववेत्ता, ऋषि-महर्षियों ने पर्वों, त्योहारों की व्यवस्था इसी दृष्टि से की कि महान व्यक्तियों के चरित्र और घटनाओं का प्रकाश जनमानस में पहुंचे और उनमें धर्मधारण, कर्तव्यनिष्ठा, परमार्थ, लोक मंगल, देशभक्ति की भावनाएं विकसित हों। महान लोगों के मार्ग निर्देशन से समाज समुन्नत और सुविकसित बने। दशहरा, दीवाली, होली, राष्ट्रीय त्योहार, महापुरुषों या अवतारों की जयंतियां इसीलिए मनाई जाती हैं।

पर्व और त्योहारों में मनुष्य और मनुष्य के बीच, मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है, यहां तक कि उसे पूरे ब्रह्मांड के कल्याण से जोड़ दिया है। इनमें लौकिक कार्यों के साथ ही धार्मिक तत्त्वों का ऐसा समावेश किया गया है, जिससे हमें न केवल अपने जीवन निर्माण में सहायता मिले, बल्कि समाज की भी उन्नति होती रहे।

पर्व और त्योहार धर्म एवं आध्यात्मिक भावों को उजागर कर लोक के साथ परलोक सुधार की प्रेरणा भी देते हैं। इस प्रकार मनुष्यों की आध्यात्मिक उन्नति में भी ये सहायक होते हैं।

महर्षि कणाद से एक शिष्य ने पूछा–'गुरुदेव ! भारतीय धर्म में व्रतों-जयंतियों की भरमार है। कदाचित् ही कोई दिन ऐसा छूटा हो, जिसमें ये न पड़ते हों। इसका क्या कारण है ? कृपया समझाकर बताइए।'

महर्षि बोले–'तात ! व्रत व्यक्तिगत जीवन को अधिक पवित्र बनाने के लिए हैं, जयंतियां महामानवों से प्रेरणा ग्रहण करने के लिए। उस दिन उपवास, ब्रह्मचर्य, एकांत सेवन, मौन, आत्म-निरीक्षण आदि की विधा संपन्न की जाती है। दुर्गुण छोड़ने और सद्गुण अपनाने के लिए देव पूजन करते हुए संकल्प किए जाते हैं। अब उतने व्रतों का निर्वाह संभव नहीं। इसलिए पाक्षिक व्रत करना हो, तो दोनों एकादशी, मासिक करना हो, तो पूर्णिमा और साप्ताहिक करना हो, तो रविवार या गुरुवार में से कोई एक रखा जा सकता है।'

109. दीवाली पर लक्ष्मी पूजन क्यों?

हर हिंदू परिवार में दीवाली की रात्रि को धन-दौलत की प्राप्ति हेतु लक्ष्मी का पूजन होता है। ऐसा माना जाता है कि दीवाली की रात लक्ष्मी घर में आती हैं। इसीलिए लोग देहरी से घर के अंदर जाते हुए लक्ष्मीजी के पांव (पैर) बनाते हैं। पुराणों के आधार पर कुल और गोत्रादि के अनुसार लक्ष्मी-पूजन की अनेक तिथियां प्रचलित रहीं, लेकिन दीवाली पर महालक्ष्मी पूजन को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है। व्यापारी वर्ग के लिए तो लक्ष्मी पूजन का महत्त्व और भी अधिक होता है। वे पूजा के उपरांत अपनी नई बहियों पर शुभ-लाभ, श्री गणेशाय नमः, श्री लक्ष्मीजी सदा सहाय और स्वस्तिक व ॐ को भी लिखते हैं, फिर लेखा-जोखा आरंभ करते हैं।

लक्ष्मी को चंचला कहा गया है, जो कभी एक स्थान पर रुकती नहीं। अतः उसे स्थायी बनाने के लिए कुछ उपाय, पूजन, आराधना, मंत्र जाप आदि का विधान है। लक्ष्मी साधना गोपनीय एवं दुर्लभ कही गई है। इसका मुख्य कारण विश्वामित्र का कठोर आदेश ही है। विश्वामित्र ने कहा था–'इस लक्ष्मी प्रयोग को सदैव गुप्त ही रखना चाहिए और जीवन के अंत में अपने अत्यंत प्रिय एवं सुयोग्य शिष्य को लक्ष्मी आबद्ध साधना समझाई जानी चाहिए।'

रावण संहिता में रावण कहता है कि लक्ष्मी साधना इस धरती की सर्वश्रेष्ठ साधना है, जिसे मैंने धनाधीश कुबेर से सीखा है। इसी साधना के बल पर मैंने लंका को सोने की बना दिया है।

गोरक्ष संहिता में गुरु गोरखनाथ ने भी विश्वामित्र विरचित लक्ष्मीसाधना को सर्वोत्तम बताया है। योगीराज श्रीकृष्ण ने अपनी द्वारिका को स्वर्णमयी बनाकर यह सिद्ध कर दिया था कि लक्ष्मी साधना के द्वारा धनवान बना जा सकता है।

महर्षि वसिष्ठ ने कैकय नरेश से युद्ध करते समय राजा दशरथ को अतुलनीय स्वर्ण कर्ज के रूप में दिया था। यह सब लक्ष्मी साधना का ही प्रताप था।

ऐसा माना जाता है कि समुद्र मंथन में लक्ष्मी के प्रकट होने पर इंद्र ने उनकी स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर लक्ष्मी ने इंद्र को वरदान दिया कि तुम्हारे द्वारा दिए गए इस द्वादशाक्षर मंत्र का जो व्यक्ति नियमित रूप से प्रतिदिन तीनों संध्याओं में भक्तिपूर्वक जप करेगा, वह कुबेर के सदृश ऐश्वर्य युक्त हो जाएगा। इस प्रकार लक्ष्मी जी की पूजन विधि प्रचलित हुई।

लक्ष्मीजी का वास कहां ?

महर्षि वेदव्यास का कहना है–

घृतिः शमो दमः शौच कारुण्य वागनिष्ठुरा।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः॥ *–महाभारत, उद्योग पर्व 38/38*

अर्थात् धैर्य, मनोनिग्रह, इंद्रियों को वश में करना, दया, मधुर वाक्य और मित्रों से वैर न करना, ये सात बातें लक्ष्मी (ऐश्वर्य) को बढ़ाने वाली हैं।

हितोपदेश में कहा गया है–

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरंकृतज्ञं दृढ सौहृदंच लक्ष्मी स्वयं याति निवास हेतो॥ –*हितोपदेश 178*

अर्थात् उत्साही, आलस्यहीन, कार्य करने की विधि जानने वाला, व्यसनों से रहित, शूर, उपकार मानने वाला तथा दृढ़ मित्रता वाले मनुष्य के पास लक्ष्मी स्वतः ही निवास के लिए पहुंच जाती है।

शारदातिलक 8/161 में उल्लेख किया गया है कि अधिक श्री की कामना करने वाले व्यक्ति को सदा सत्यवादी होना चाहिए, पश्चिम की ओर मुंह करके भोजन करना तथा हंसमुख मधुर भाषण करना चाहिए।

एक बार लोक कल्याण के लिए प्रद्युम्न की माता रुक्मिणी ने लक्ष्मीजी से पूछा–'देवी ! आप किस स्थान पर और कैसे मनुष्यों के पास रहती हैं ?'

लक्ष्मी ने उत्तर दिया–'जो मनुष्य मित्भाषी, कार्यकुशल, क्रोधहीन, भक्त, कृतज्ञ, जितेंद्रिय और उदार हैं, उनके यहां मेरा निवास होता है। सदाचारी, धर्मज्ञ, बड़े-बूढ़ों की सेवा में तत्पर, पुण्यात्मा, क्षमाशील और बुद्धिमान् मनुष्यों के पास मैं सदा रहती हूं। जो स्त्रियां पति की सेवा करती हैं, जिनमें क्षमा, सत्य, इंद्रिय, संयम, सरलता आदि सद्‌गुण होते हैं, जो देवताओं और ब्राह्मणों में श्रद्धा रखती हैं, जिनमें सभी प्रकार के शुभ लक्षण मौजूद हैं, उनके समीप मैं निवास करती हूं। जिस घर में सदा होम होता है और देवता, गौ तथा ब्राह्मणों की पूजा होती है, उस घर को मैं कभी नहीं छोड़ती।'

लक्ष्मी कहां नहीं रहती उसके विषय में **मा. पु. 18/54-55 शार्गधर पद्यति 657** में कहा गया है कि जिसके वस्त्र तथा दांत गंदे हैं, जो बहुत खाता तथा निष्ठुर भाषण करता है, जो सूर्यास्तकाल में भी सोया रहता है, वह चाहे चक्रपाणि विष्णु ही क्यों न हो, उसका लक्ष्मी परित्याग कर देती है।

बृहददेवज्ञ रंजनन 168 में कहा गया है कि पराया अन्न, दूसरों के वस्त्र, पराया यान (सवारी), पराई स्त्री और परगृहवास ये इंद्र की श्री-संपत्ति को भी हरण कर लेते हैं।

लक्ष्मी का कहना है कि जो आलसी, क्रोधी, कृपण, व्यसनी, अपव्ययी, दुराचारी, कटुवचन बोलने वाले, अदूरदर्शी और अहंकारी होते हैं, उनके कितने ही प्रयत्न करने पर भी मैं अधिक दिन नहीं ठहरती।

महाभारत, शांतिपर्व 225 में उल्लेख मिलता है कि दैत्यराज बलि ने एक बार उच्छिष्ट भक्षण कर ब्राह्मणों का विरोध किया। श्री ने उसी समय बलि का घर छोड़ दिया। लक्ष्मीजी ने कहा–'चोरी, दुर्व्यसन, अपवित्रता एवं अशांति से मैं घृणा करती हूं। इसी कारण आज मैं बलि का त्याग कर रही हूं, भले ही वह मेरा अत्यंत प्रिय भक्त रहा है।'

110. शुभ कार्यों में मुहूर्त का महत्त्व क्यों?

हम आए दिन देखते हैं कि अनेक लोग दैनिक दिनचर्या की शुरुआत हो या यात्रा पर जाना हो, विवाह का अवसर हो, गृह-निर्माण हो या गृहप्रवेश, सभी के लिए शुभ घड़ी, मुहूर्त और चौघड़ियां देखकर कार्य प्रारंभ करते हैं। इसे कुछ पढ़े-लिखे व्यक्ति भले ही दकियानूसी अंधविश्वास कहें, लेकिन वैज्ञानिक प्रयोगों से पता चला है कि दिन के 24 घंटों में कुछ गिनी-चुनी घड़ियां ही ऐसी होती हैं, जिनमें किए गए काम सफल होने की संभावना प्रबल हो जाती है।

यों तो विचार पूर्वक शुभ कार्य करने के लिए हर समय शुभ होता है। बुद्धिमान् न मुहूर्त निकालते हैं, न साथ ढूंढ़ते हैं और न किसी का सहारा देखते हैं। वस्तुतः समय का प्रत्येक क्षेत्र शुभ है। अशुभ तो मनुष्य का संशय है। परोपकारी कार्य को जितनी जल्दी किया जाए, वही शुभ है। देर तो उनमें करनी चाहिए, जो अशुभ हैं, जिन्हें करते हुए अंतःकरण में भय, संकोच का संचार होता है। ऐसे दुष्ट कार्य किसी भी समय किए जाएं, वे दुख ही देंगे, चाहे जितने मुहूर्त देख लो।

शास्त्रकार ने कहा है–

सदुद्देश्यकृते कार्ये विवाहे जातकर्मणि।
विघ्नाऽशुभमुहूर्त्तानां प्रभावो नोपजायते॥ *–ब्रह्मवर्चस पंचांग*

अर्थात् सदुद्देश्य से प्रारंभ किए गए शुभ कार्यों पर किसी भी अशुभ मुहूर्त का प्रभाव नहीं पड़ता।

यदानास्तं गतो भानुगोधूल्या पूरितं नभः।
सर्वमंगलकार्येषु गोधूलिः शस्यते सदा॥ *–ब्रह्मवर्चस पंचांग*

अर्थात् जब सूर्य अस्त होने पर हो, जिस समय गायें घर वापस आती हों, वह गोधूलि वेला मांगलिक कार्यों में शुभप्रद होती है।

ब्रह्मवर्चस पंचांग में कहा गया है कि अक्षय तृतीया (बैसाख शुक्ल तृतीया), अक्षय नवमी (कार्तिक शुक्ल नवमी), वसंत पंचमी (माघ शुक्ल पंचमी), गंगा-दशहरा (ज्येष्ठ शुक्ल दशमी), विजया दशमी (आश्विनी शुक्ल दशमी), महाशिवरात्रि (फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी), श्रीराम नवमी (चैत्र शुक्ल नवमी) तथा सभी पूर्णिमा आदि पुण्य पर्वों पर विवाहित मंगल कार्यों के लिए मुहूर्त विचार की आवश्यकता नहीं पड़ती।

लोक मंगल के लिए किए गए यज्ञादि अनुष्ठानों में सभी मंगलमय मुहूर्तों का निवास होता है, उनमें बिना मुहूर्त का विचार किए कोई भी शुभ कार्य किए जा सकते हैं। पवित्र तीर्थ स्थलों में शुभ संस्कार करने का निर्णय अपने आप में शुभ मुहूर्त माना गया है। तीर्थ स्थल एवं शक्तिपीठें सिद्ध स्थल कहे जाते हैं, उनमें सत्कर्म, संस्कार आदि संपन्न करने के लिए लग्न मुहूर्त देखने की किंचित भी आवश्यकता नहीं होती।

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि सभी दिन भगवान् के बनाए हुए हैं। इनमें एक भी अपवित्र, अशुभ एवं अनिष्टकारक नहीं है। मांगलिक कार्यों को गुरुजनों का आशीर्वाद लेकर कभी भी कर लेना चाहिए। अनुपयुक्त कार्यों को ही तिथि, वार का दोष निकाल कर आगे के लिए टालना चाहिए। लोकमत में रविवार और गुरुवार भी अधिक श्रेष्ठ माने जाते रहे हैं।

आचार्य महीधर का मत है कि मुहूर्तों में सुविधा एवं अवसर ही प्रधान कारण हैं। जैसे वर्षा ऋतु में आवागमन में असुविधा होती है, इसलिए उन दिनों विवाह नहीं होते, किंतु जिन देशों में वर्षा के दिन अन्य महीनों में होते हैं, उन दिनों विवाहादि में वहां कोई अड़चन नहीं।

ब्रह्मवर्चस पंचांग में कहा गया है कि अमंगल करने वाले जो मुहूर्त अथवा योगदोष हैं, वे सब गायत्री के प्रचंड तेज से भस्म हो जाते हैं।

111. शकुन-अपशकुन की मान्यता क्यों?

वेदों, स्मृतियों, पुराणादि धर्मशास्त्रों एवं फलित ज्योतिष शास्त्रों तथा धर्मसिन्धु में शुभ-अशुभ शकुनों के विषय में विस्तार से जानकारी दी गई है। शकुन हेतु तुलसीकृत 'रामाज्ञा-प्रश्न' एवं 'रामशलाका' भी प्रसिद्ध हैं। शकुन के संबंध में प्रसिद्ध ग्रंथ वसंतराज शाकुन का कथन है–**'शुभाशुभज्ञानविनिर्णयाय हेतुर्नणां यः शकुन'** अर्थात् जिन चिह्नों को देखने से 'शुभ-अशुभ' का ज्ञान हो–वह शकुन है। जिस चिह्न संकेत/निमित्त द्वारा शुभ जानकारी मिले, वह शुभ शकुन और अशुभ जानकारी मिले, उसे अपशकुन कहते हैं।

भगवान् राम की बारात चढ़ने के समय शकुन होने से मंगल हुआ, ऐसा रामायण में उल्लेख मिलता है–

दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूं पावा॥
सानुकूल बह त्रिबिध बयारी। सघट सबाल आव बर नारी॥
लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई॥
छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥

–रामचरितमानस–बालकांड 302/2-4

ऐसा माना जाता है कि ये संकेत ही शुभाशुभ का ज्ञान कराकर भविष्य की घटनाओं का निर्धारण करते हैं। वास्तव में अच्छी या बुरी घटनाओं की पुनरावृत्ति ही इन विश्वासों की जड़ में होती है। फलित ज्योतिष एवं धर्मशास्त्रों में यात्रा हेतु या घर से वाहर निकलते समय शकुन विचार करने का बड़ा महत्त्व बताया गया है। शुभ शकुन के कुछ संकेत इस प्रकार हैं–ब्राह्मण, गाय, भरा हुआ कलश, शंख, उसकी

ध्वनि, वेद पाठ की ध्वनि, कन्या, मोर, नेवला, सफेद बैल, गन्ना, सौभाग्यवती स्त्री, सिर या हाथ में गोबर लाते हुए, पालकी, धनुष, चक्र, मधुर कर्णप्रिय संगीत, कमल, फूल, मंदिर/धर्मस्थल, सफेद वस्त्र, हाथी, घोड़ा, स्वर्ण के आभूषण, घी, शहद, दूध, दही, चावल, पका अन्न, चंदन से भरी कटोरी, व्यंजन, रुदन रहित शवयात्रा, मांस लिए हुए आना, भारी रजाई लादे हुए दिखना, बालक का हंसते-खेलते हुए आना, निर्मल आकाश, खेत में लगा हुआ अन्न आदि।

अपशकुन के लोक प्रचलित संकेत इस प्रकार हैं—रात्रि में तारे का टूटना देखना, भीगे वस्त्रों में स्त्री का दिखना, बिल्ली का रास्ता काटना, किसी का छींक देना, कौवे का दोपहर में बोलना, रुई, कीचड़, चमड़ा, राख, फूटा हुआ बर्तन, हड्डी, सूखी लकड़ी, तेल, गुड़, साबुन, उड़द, ठोकर लगना, पैर फिसलना, कपड़े का किसी चीज में उलझना, कुत्ते का रोना, काना, तेली दिखना, बिल्लियों को लड़ते देखना आदि।

उल्लेखनीय है कि किसी काम की सफलता के लिए मन में उत्साह, आशा, धैर्य और पूर्ण आत्मविश्वास होना ही चाहिए। इसमें कमी आने से अपेक्षित एकाग्रता, श्रमशीलता एवं तत्परता घट जाएगी। परिणामस्वरूप सफलता की संभावना में भी कमी आएगी। शुभ-अशुभ शकुनों में विश्वास करने में यही सबसे बड़ा नुकसान है कि मन अकारण ही आशंकित और आतंकित हो जाता है, जिससे असफलता के बीज पनपने लगते हैं और भली प्रकार प्रयास न कर पाने के कारण सफलता नहीं मिलती। स्मरणीय है कि अपशकुन हमें तभी याद आते हैं, जब हमको किसी कार्य में असफलता मिलती है। कार्य में सफलता मिलने पर पूर्व में देखा गया अपशकुन भी कोई मायने नहीं रखता। स्पष्ट है कि सफलता या असफलता का मिलना हमारी योग्यता या अयोग्यता का ही परिचायक है। हिन्दुओं में आज तक पुरुष के दाहिने और स्त्रियों के बाएं अंग फड़कने को शकुन मानते हैं और पुरुष के बाएं और स्त्रियों के दाएं अंग फड़कने को अपशकुन समझते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि नाड़ियों में रक्तप्रवाह के कारण ही अंगों में फड़कन महसूस होती है, जिसका किसी शकुन अपशकुन के साथ कोई संबंध नहीं होता। छींक आना शरीर-विज्ञान के मतानुसार एक सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया है, जो श्वास नली में अवरोध आने पर उत्पन्न होती है, जिसके परिणामस्वरूप आया अवरोध एकाएक दूर हो जाता है। इसके अलावा हानिकारक वायुमंडल के कण जब नाक के अंदर और श्वास नली में जमा होकर अवरोध पैदा करते हैं तो छींक रूपी प्राकृतिक उपाय से शरीर की रक्षा ही होती है। यदि यह हानिकारक गंदगी छींक के माध्यम से बाहर न हो तो मानसिक तनाव, चक्कर आना जैसे बुरे प्रभाव शरीर पर पड़ते हैं। इसलिए छींक आना स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभप्रद ही है।

इसी प्रकार आंख का फड़कना शुभ या अशुभ माना जाता है, जो शरीर विज्ञान के अनुसार रक्त की अनियमितता के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। रक्त प्रवाह में रुकावट और उसका दूर होना ही फड़कन का अनुभव देता है। इसलिए जहां तक हो सके, इन अपशकुनों के चक्कर में न पड़ें। कर्म में विश्वास करें।

112. बुरी नजर लगने की मान्यता क्यों?

संसार के लगभग सभी देशों में बुरी नजर लगने के प्रभाव को जाना जाता है। जीवित प्राणियों पर ही नहीं वरन् निर्जीव पदार्थ तक बुरी नजर लगने पर विकारग्रस्त हो जाते हैं। सुंदर वस्तुएं खो जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं। यहां तक कि सुंदर प्रतिमा बुरी नजर के प्रभाव से खंडित होती देखी गई है। बिना किसी पूर्व रोग के एकाएक बच्चा बीमार पड़ जाता है। दुधारू पशु–गाय, भैंस आदि को जब बुरी नजर लग जाती है, तो उसका दूध सूख जाता है।

बुरी नजर लगने का आशय यह है कि जब कोई व्यक्ति अत्यधिक दुर्भावना या आकर्षण से एकाग्र होकर किसी व्यक्ति या वस्तु को देखता है, तो उसकी बेधक दृष्टि उस वस्तु पर दुष्प्रभाव डालती है। भूखे व्यक्ति की कुदृष्टि आपके भोजन को विषैला बना सकती है। अतः भोजन जहां तक हो सके, अजनबियों के बीच न करें।

आमतौर पर बुरी नजर का प्रभाव कोमल चित्त वाले, बच्चों, महिलाओं और पालतू जानवरों पर देखा जाता है। इसके अलावा मकान, उद्योग, व्यापार, वाहन, दुकान आदि पर भी बुरी नजर का असर होता है। बच्चों पर बुरी नजर का प्रभाव शैशवावस्था में अधिक होता है। बुरी नजर के प्रभाव से अच्छा भला बच्चा देखते-देखते ही बीमार पड़ जाता है। वह दूध पीना छोड़कर अधिक रोता है। चिड़चिड़ा हो जाता है, ज्वर आ जाता है। उसकी आंखे चढ़ी हुई-सी रहती हैं। पलकों की बरौनियां खड़ी तथा मुंह से खट्टी गंध आने लगती है। अपच की शिकायत हो जाती है।

महिलाओं पर बुरी नजर का प्रभाव विवाह के समय, गर्भावस्था में बच्चा होने के बाद के समय में अकसर होता है। वयस्क व्यक्ति को जब बुरी नजर लगती है, तो उसे मानसिक तनाव, बेचैनी, अशांति का अनुभव, शरीर की पीड़ा, ज्वर, मंदाग्नि आदि तकलीफें महसूस होती हैं।

बुरी नजर लगने के मूल में वैज्ञानिकों ने मानवीय विद्युत् का अहितकर प्रभाव माना है। किसी-किसी व्यक्ति की दूषित दृष्टि इतनी बेधक होती है कि उससे बच्चे की शक्ति खिंचती है और वे उसके झटके को बर्दाश्त न करके बीमार हो जाते हैं। ऐसा देखा गया है कि अजगर अपनी दृष्टि से आकाश से पक्षियों को अपनी ओर खींच लेता है। भेड़िए की दृष्टि से भेड़ और बिल्ली की दृष्टि से कबूतर इतने अशक्त हो जाते हैं कि भाग तक नहीं सकते। इसी को आंखों की आकर्षण शक्ति का सम्मोहन कहते हैं।

नजर से बचाने के लिए काले टीके का या काले धागे के प्रयोग के पीछे मान्यता यह है कि यह विद्युत् का सुचालक होता है। आमतौर पर देखने में आया है कि आकाश की बिजली अकसर काले आदमी, जानवर, सांप या अन्य काली वस्तुओं पर पड़ती है। जाड़े के दिनों में काले कपड़े अधिक गर्मी सोखते हैं। इसीलिए बच्चों को कपाल, हाथ-पैरों में और आंखों में काजल लगाया जाता है। पैर, हाथ, गले, कमर में काला डोरा बांधा जाता है। काली बकरी का दूध पिलाया जाना और काली भस्म चटाना जैसे सभी कार्यों का उद्देश्य नजर के दुष्प्रभाव से बचाने की शक्ति ग्रहण करना है। बुरी नजर से बचने के लिए शेर का नाखून, नीलकंठ का पर, मूंज या तांबे का ताबीज गले में पहना जाता है। दुकानदार नीबू और हरी मिर्चें दुकान में लटका कर रखते हैं। ट्रक मालिक ट्रक के पीछे जूता लटकाते हैं। कारखाने वाले प्रवेश द्वार पर घोड़े की नाल लगाते हैं। मकान पर काली हंडिया टांगी जाती है। यह नजर की एकाग्रता भंग करने की दृष्टि से किया जाता है।

113. यमराज का दूसरा नाम धर्मराज क्यों?

प्राणी की मृत्यु या अंत को लाने वाले देवता यम हैं। यमलोक के स्वामी होने के कारण ये यमराज कहलाए। चूंकि मृत्यु से सब डरते हैं, इसलिए यमराज से भी सब डरने लगे। जीवित प्राणी का जब अपना काम पूरा हो जाता है, तब मृत्यु के समय शरीर में से प्राण खींच लिए जाते हैं, ताकि प्राणी फिर नया शरीर प्राप्त कर नए सिरे से जीवन प्रारंभ कर सके।

यमराज सूर्य के पुत्र हैं और उनकी माता का नाम संज्ञा है। उनका वाहन भैंसा और संदेशवाहक पक्षी कबूतर, उल्लू और कौवा भी माना जाता है।

उनका अचूक हथियार गदा है। यमराज अपने हाथ के कालसूत्र या कालपाश की बदौलत जीव के शरीर से प्राण निकाल लेते हैं। यमपुरी यभराज की नगरी है, जिसके दो महाभयंकर चार आंखों वाले कुत्ते पहरेदार हैं। यमराज अपने सिंहासन पर न्यायमूर्ति की तरह बैठकर विचार भवन कालीची में मृतात्माओं को एक-एक कर बुलवाते हैं, जहां चित्रगुप्त सब प्राणियों की बही खोलकर लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं। कर्मों को ध्यान में रखकर यमराज अपना फैसला देते हैं, क्योंकि वे जीवों के शुभाशुभ कर्मों के निर्णायक हैं।

यमराज की यों तो कई पत्नियां थीं, लेकिन उनमें सुशीला, विजया और हेमनाल अधिक जानी जाती हैं। उनके पुत्रों में धर्मराज युधिष्ठिर को सभी जानते हैं। न्याय के पक्ष में फैसला देने के गुणों के कारण ही यमराज और युधिष्ठिर जगत में धर्मराज के नाम से जाने जाते हैं। यम द्वितीया के अवसर पर जिस दिन भाई-बहन का त्योहार भैया-दूज मनाया जाता है। यम और यमुना की पूजा का विधान बनाया गया है। उल्लेखनीय है कि यमुना नदी को यमराज की बहन माना जाता है।

भौमवारी चतुर्दशी को यमतीर्थ के दर्शन कर सब पापों से छुटकारा मिल जाए, उसके लिए प्राचीन काल में यमराज ने यमतीर्थ में (संकठाघाट) कठोर तपस्या करके भक्तों को सिद्धि प्रदान करने वाले यमेश्वर और यमादित्य मंदिरों की स्थापना की थी। यम द्वितीया को यहां मेला लगता है। इन मंदिरों को प्रणाम करने वाले एवं यमतीर्थ में स्नान करने वाले मनुष्यों को नारकीय यातनाओं को न तो भोगना पड़ता है और न ही यमलोक देखना पड़ता है। इसके अलावा मान्यता तो यहां तक है कि यमतीर्थ में श्राद्ध करके, यमेश्वर का पूजन करने और यमादित्य को प्रणाम करके व्यक्ति अपने पितृ-ऋण से भी उऋण हो सकता है। दीपावली से पूर्व दिन यमदीप देकर तथा दूसरे पर्वों पर यमराज की आराधना करके मनुष्य उनकी कृपा प्राप्त करने के उपाय करता है। पुराणों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि किसी समय माण्डव ऋषि ने कुपित होकर यमराज को मनुष्य के रूप में जन्म लेने का शाप दिया। इसके कारण यमराज ने ही दासी पुत्र के रूप में धृतराष्ट्र तथा पाण्डु के भाई होकर जन्म लिया। यों तो यमराज परम धार्मिक और भगवद् भक्त हैं। मनुष्य जन्म लेकर भी वे भगवान् के परम भक्त तथा धर्म-परायण ही बने रहे।

114. दक्षिणावर्ती शंख चमत्कारी देव वस्तु क्यों?

बाईं ओर पेट खुलने वाले बहुतायत में उपलब्ध वामावर्त शंख की अपेक्षा दुर्लभता से उपलब्ध दक्षिण की ओर पेट खुलने वाले यानी जिनका कपाट दाईं ओर हो ऐसे दक्षिणावर्ती शंख कीमती होते हैं। ये सैकड़ों से हजारों रुपयों में मिलते हैं। इसमें लक्ष्मी का स्थायी निवास माना जाता है। भगवती महालक्ष्मी और दक्षिणावर्ती शंख दोनों की ही उत्पत्ति सागर से हुई है। इस दृष्टि से एक ही पिता की संतान होने के कारण इसे लक्ष्मी का ही छोटा भाई कहा गया है।

शास्त्रकार ने दक्षिणावर्ती शंख की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया है–

दक्षिणार्तेशंखायं यस्य सद्मनि तिष्ठति।
मंगलानि प्रकुर्वन्ते तस्य लक्ष्मीः स्वयं स्थिरा॥
चन्दनागुरुकपूरैः पूजयेद् गृहेऽन्वहम्।
स सौभाग्ये कृष्णसमो धने स्याद् धनदोपमः॥

अर्थात् जिस घर में उत्तम श्वेतवर्ण दक्षिणावर्ती शंख रहता है, वहां सब मंगल ही मंगल होता है। लक्ष्मी स्वयं स्थिर होकर निवास करती है। जिस घर में चंदन, कपूर, पुष्प, अक्षत आदि से इसकी पूजा नियमित की जाती है, वह कृष्ण के समान सौभाग्यशाली तथा धनपति बन जाता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में इस शंख के संबंध में कहा गया है–

शंखं चन्द्रार्कदैवत्यं मध्ये वरुणदेवतन्। पृष्ठे प्रजार्पति विद्यादग्रे गंगा सरस्वतीम्॥
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाज्ञया। शंखे तिष्ठंति विप्रेन्द्रर्तस्मा शंखं प्रपूजयेत्॥
दर्शनेन हि शंखस्य किं पुनः स्पर्शनेन तु। विलयं यांति पापनि हिमवद् भास्करोदयेः॥

अर्थात् यह शंख चंद्रमा और सूर्य के समान देव स्वरूप है। इसके मध्य में वरुण, पृष्ठ भाग में ब्रह्मा और अग्र भाग में गंगा का निवास है। शंख में सारे तीर्थ विष्णु की आज्ञा से निवास करते हैं और यह कुबेर स्वरूप है। अतः इसकी पूजा अवश्य करनी चाहिए। इसके दर्शन मात्र से सभी दोष ऐसे नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय होने पर बर्फ पिघल जाती है, फिर स्पर्श की तो बात ही क्या है!

कहा जाता है कि जिसके पास दक्षिणावर्ती शंख का जोड़ा होता है, वह सदा पराक्रमी और विजयी होता है। वह सुख-समृद्धि पाता है। उसके यहां से दरिद्रता, असफलता पलायन कर जाती है। नियमित रूप से इसके दर्शन, विधि-विधानानुसार पूजन करने से अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होते हैं। इसे दुकान में रखने से व्यापार वृद्धि, धन में रखने से धन वृद्धि और अन्न में रखने से अन्न वृद्धि होती है। इसीलिए इसको वैभव और ऐश्वर्य का प्रतीक माना जाता है।

दक्षिणावर्ती शंख में जल भरकर घर के सदस्यों, वस्तुओं और कमरों में छिड़कने से अभिशाप, दुर्भाग्य, अभिचार और दुष्ट ग्रहों का प्रभाव नष्ट होता है। इस शंख में दूध भरकर प्राण प्रतिष्ठित महालक्ष्मी यंत्र और

लक्ष्मी पर श्रद्धापूर्वक रोजाना चढ़ाने से आकस्मिक लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तंत्र शास्त्रों में कहा गया है कि 'ॐ ह्रीं श्री क्लीं ब्लूं सुदक्षिणावर्त शंखाय नमः' मंत्र का जप प्रतिदिन 108 बार करके शंख का विधिवत् पूजन किया जाए, तो श्री और यश की वृद्धि होती है, साथ ही संतानहीन को संतान का लाभ भी मिलता है।

समुद्र से उत्पन्न, चंद्रमा के अमृत मंडल से सिंचित, वायु, अंतरिक्ष और ज्योतिर्मंडल को अपने भीतर संजोने वाला यह विशिष्ट शंख आयुवर्धन, शत्रुओं को निर्बल करने वाला, अज्ञान, रोग और अलक्ष्मी को दूर भगाने वाला होता है। इसका प्रयोग अर्घ्य देने के लिए विशेष तौर पर किया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस शंख को कान के पास ले जाकर सुनें, तो अपने आप मधुर ध्वनि सुनाई देती है, जिससे हृदय प्रसन्न हो जाता है।

पुलस्त्य संहिता में महर्षि पुलस्त्य कहते हैं कि लक्ष्मी को प्राप्त करना और उसे स्थायी रूप से घर में निवास देने का एकमात्र प्रयोग दक्षिणावर्ती शंख ही है, जो कि अपने आप में आश्चर्यजनक रूप से धन देने में समर्थ है। इसके माध्यम से ऋण, दरिद्रता और अभाव मिट जाते हैं तथा सभी दृष्टियों से पूर्णता और संपन्नता आ जाती है।

लक्ष्मी संहिता में इसे धन प्रदान करने और पूर्ण सफलता देने में समर्थ बताया गया है। **विश्वामित्र संहिता** में महर्षि विश्वामित्र ने इस शंख की प्रशंसा में कहा है कि धन वर्षा करने और सुख-समृद्धि प्रदान करने में यह अतुलनीय है।

भगवत्पाद शंकराचार्य का कहना है कि यदि दक्षिणावर्ती शंख मिल जाए और फिर भी व्यक्ति इसका उपयोग न करे, तो वह वास्तव में अभागा ही कहा जाएगा, क्योंकि यह तो जीवन का सौभाग्य है, सत्कर्मों का उदय है, लक्ष्मी प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय है।

गोरक्ष संहिता में गुरु गोरखनाथ ने दक्षिणावर्ती शंख का महत्त्व बताते हुए लिखा है कि इसका श्रेष्ठ तांत्रिक प्रयोग करने से तुरंत और अचूक प्रभाव होता है जिसे मैंने स्वयं व अपने शिष्यों को संपन्न कराकर पूर्ण सफलता पाई है।

महर्षि मार्कण्डेय के मतानुसार भगवती लक्ष्मी के सभी प्रयोगों में दक्षिणावर्ती शंख का प्रयोग ही प्रामाणिक और धन वर्षा करने में समर्थ है।

115. भगवान् का नाम जपने से मुक्ति की मान्यता क्यों?

भगवन्नाम जप की महिमा अनंत अतुलनीय है। इसीलिए इसे माधुर्य, ऐश्वर्य और सुख की खान कहा गया है। भक्तशिरोमणि नारद, भक्त प्रह्लाद, ध्रुव, जटायु, अजामिल, केवट, हनुमान, शबरी, अम्बरीष, गणिका आदि ने इस भगवन्नाम जप के द्वारा भगवत्प्राप्ति की है। इस नाम जप के प्रभाव से शिवजी अविनाशी हैं। मुनिजन, समस्त योगीजन, शुकदेव, सनकादि नाम जप के प्रभाव से ही ब्रह्मानंद का भोग करते हैं। वेद-पुराणादि धार्मिक ग्रंथों एवं संतों के वचनामृत में नाम की महिमा का उल्लेख मिलता है। इसमें भगवान् के नाम स्मरण-जप को कलियुग का मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना गया है, क्योंकि कलियुग में मानव कल्याण और विश्वशांति के लिए श्री हरि के नाम के अतिरिक्त दूसरा सुलभ साधन नहीं है।

गोस्वामी तुलसीदास का कहना है–

नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥ –*रामचरितमानस 1/23/8*

अर्थात् नाम के यथार्थ स्वरूप, महिमा, रहस्य और प्रभाव को जानकर श्रद्धापूर्वक नाम जप करने से वही ब्रह्म ऐसे प्रकट हो जाता है, जैसे रत्न को जानने से उसका मूल्य।

श्रीमद्भागवत् में कहा गया है–

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोत्रं हेलनमेव वा। वैकुण्ठनाम ग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः। त्वामनुबध्नामि हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥

–*श्रीमद्भागवत् 6.2.14.15*

अर्थात् भगवान् का नाम चाहे जैसे लिया जाए यानी किसी बात का संकेत करने के लिए, हंसी करने के लिए अथवा तिरस्कारपूर्वक ही क्यों न हो, वह संपूर्ण पापों का नाश करने वाला होता है। पतन होने पर, गिरने पर, कुछ टूट जाने पर, डसे जाने पर, बाह्य या आंतर ताप होने पर और घायल होने पर जो पुरुष विवशता से भी 'हरि' नाम का उच्चारण करता है, वह यम यातना के योग्य नहीं।

भगवान् **वेदव्यास** का कहना है–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥ –*बृहन्नारदीयपुराण 38/127*

अर्थात् इस नानाविध आदि-व्याधि से ग्रस्त कलियुग में हरिनाम जप संसार सागर से पार होने का एकमात्र उत्तम सहारा है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं–

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः। –*योगदर्शन 2/44*

अर्थात् नामोच्चारण से इष्ट देव परमेश्वर के साक्षात् दर्शन होते हैं।

पद्मपुराण में लिखा है कि जो मनुष्य परमात्मा के 'हरि' नाम का नित्य उच्चारण करता है, उसके उच्चारण मात्र से वह मुक्त हो जाता है।

भगवान् वेदव्यास ने **श्रीमद्भागवत 12.3.52** में कहा है कि सत्युग में भगवान् विष्णु के ध्यान से, त्रेता में यज्ञ से और द्वापर में भगवान् की पूजा-अर्चना से जो फल मिलता था, वह सब कलियुग में भगवान् के नाम-कीर्तन मात्र से ही प्राप्त हो जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने **श्रीरामचरितमानस** के उत्तरकांड 102, ख में कहा है कि कलियुग में तो केवल भगवान् के नाम से वही गति मिलती है जो सत्युग, त्रेता और द्वापर में पूजा, यज्ञ और योग से प्राप्त होती है। तुलसीदास भगवान् श्रीराम के नाम जपने पर विशेष बल देते हैं।

भाव कुभाव अनख आलसहू।
नाम जपत मंगल दिसि दसहू॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है–

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ *–श्रीमद्भगवद्गीता 8/5*

अर्थात् जो पुरुष अंतकाल में भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है–इसमें कोई भी संदेह नहीं है।

अजामिल की कथा आपने सुनी होगी। वह बहुत बड़ा पापी था। संयोग से उसने अपने छोटे बेटे का नाम नारायण रख दिया था। अंत समय में अजामिल ने यमदूतों के भय और प्यास के कारण अपने बेटे नारायण को पुकारा। श्रीमद्भागवत 6/2/8, 18 के अनुसार जिस समय उसने 'ना-रा-य-ण' इन चार अक्षरों का उच्चारण किया, उसी समय (केवल नामोच्चारण मात्र से ही) उस पापी के समस्त पापों का प्रायश्चित हो गया। जैसे जाने या अनजाने में ईंधन से अग्नि का स्पर्श हो जाए तो वह भस्म हो जाता है, वैसे ही जानबूझ कर या अनजाने में भगवान् के नामों का संकीर्तन करने से मनुष्य के सारे पाप भस्म हो जाते हैं। नारायण का नाम लेने मात्र से नारायण के दूत आ गए और यमदूतों से छुड़ाकर उसे स्वर्ग ले गए।

अंतिम समय की मानसिक स्थिति के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥ *–श्रीमद्भगवद्गीता 8/6*

अर्थात् जो मनुष्य अंतकाल में जिस-जिस भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, वह उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है, अर्थात् अंत समय में देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि सजीव पदार्थों का स्मरण करते हुए मरने वाला मनुष्य उन-उन योनियों को प्राप्त हो जाता है।

116. विश्वकर्मा की पूजा क्यों?

मशीनरी से संबंधित व्यवसायों में विश्वकर्मा की प्रार्थना करके ही कार्यारंभ किया जाता है, ताकि कारखाने में कोई दुर्घटना न हो और कार्य में निरंतर सफलता मिले, यही विश्वकर्मा पूजन का रहस्य है। प्रभु ही विश्व के निर्माता हैं। इसलिए प्रभु का सर्वोपरि नाम विश्वकर्मा है। दीपावली के अगले दिन गोवर्धन पूजा के अवसर पर विश्वकर्मा के पूजन का विधान है। इस दिन कारोबार से संबंधित औजारों की साफ-सफाई करके उनकी पूजा की जाती है, फिर भी अधिकांश कंपनियों में प्रतिवर्ष 17 सितंबर को विश्वकर्मा जयंती के अवसर पर उनके पूजन के साथ-साथ औजारों की भी पूजा की जाती है।

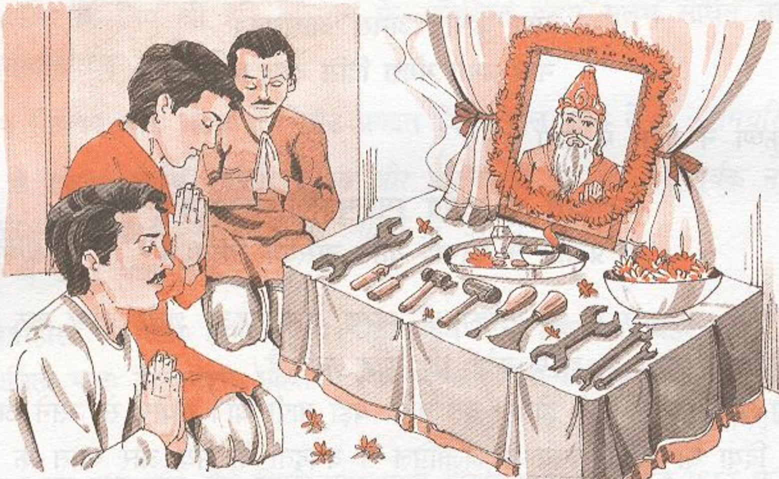

कहा जाता है कि विश्वकर्मा ने सारे लोक बनाए, अनेक देवताओं का नाम गढ़ा, उनको नाम दिए और उनके अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण किया। उन्होंने सूर्य के तेज के आठवें भाग को छीलकर निकाला और शिव का त्रिशूल, विष्णु का चक्र, कुबेर का पाश तथा कार्तिकेय आदि दूसरे देवताओं के अस्त्र-शस्त्र बनाए, जो अजेय और अमोघ थे। अनेक देवताओं के रथों का निर्माण भी उन्हीं के द्वारा किया गया। सभी देवताओं के विभिन्न अंगों के अलंकारों का निर्माण कर विश्वकर्मा देवताओं के इंजीनियर कहलाने लगे।

पुराणों में कहा गया है कि स्वर्णमयी लंका के दहन के बाद विश्वकर्मा ने उसका जीर्णोद्धार किया और उसे पहले जैसा बनाया। वे वास्तुकला (आर्किटेक्ट) के आचार्य माने जाते थे और उन्होंने अपने ज्ञान, कला-कौशल से वास्तुकला वेद को भी जन्म दिया था। भगवान् कृष्ण के आदेश पर विश्वकर्मा ने पांडवों की राजधानी इंद्रप्रस्थ (खांडवप्रस्थ) का निर्माण किया, जिसका उल्लेख महाभारत की कथा में मिलता है।

विश्वकर्मा ने घृताची नामक अप्सरा से विवाह किया और उससे अनेक पुत्र उत्पन्न किए। वे सब उन जातियों के पुरखे बने जो बढ़ई, शिल्पी, राज, कारीगर, मजदूर धातु का काम करते थे। उनके वंशज आज भी अपने नाम के साथ विश्वकर्मा कुलनाम लिखते हैं। विश्वकर्मा एक महान वास्तुकार थे। अपनी उपलब्धियों के कारण धीरे-धीरे उनमें देवता के गुण आ गए थे। इसीलिए उनकी पूजा-उपासना की जाती है।

117. प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन में ही कुंभ का मेला क्यों?

इन चार मुख्य तीर्थ स्थानों पर 12-12 वर्षों के अंतर से लगने वाले कुंभ पर्व में स्नान और दान का ग्रहयोग बनता है। इस अवसर पर न केवल भारतवर्ष के हिंदू भक्त, बल्कि बाहर के देशों से भी हिंदू कुंभ स्नान के लिए आते हैं। सामान्य तौर पर प्रति 6 वर्ष के अंतर से कहीं-न-कहीं कुंभ का योग अवश्य ही आ जाता है, इसलिए 12 वर्ष में पड़ने वाले पर्व को कुंभ और 6 वर्ष में पड़ने वाले पर्व को अर्ध कुंभ के नाम से जाना जाता है। इस पर्व पर श्रद्धालु, भक्तगण स्नान, दान और साधु संतों के सत्संग, दर्शन हेतु सावन के बादलों की तरह उमड़ पड़ते हैं, क्योंकि इससे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

ऐसा माना जाता है कि जब गुरु वृषभ राशि पर हो, सूर्य तथा चंद्र मकर राशि पर हों, अमावस्या हो, ये सब योग जब इकट्ठे होते हों, तो उस अवसर पर प्रयाग में कुंभ का पर्व मनाया जाता है। इस समय त्रिवेणी में स्नान करने वालों को एक लाख पृथ्वी की परिक्रमा करने से भी अधिक तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञों और सहस्त्रों अवश्वमेध यज्ञों का पुण्य प्राप्त होता है।

इसी प्रकार सूर्य मेष राशि पर और गुरु कुंभ राशि पर होता है, तो उस समय हरिद्वार में कुंभ का योग बनता है। जब सूर्य एवं चंद्र कर्क राशि पर हों और गुरु सिंह राशि पर स्थित हो, तो उस समय नासिक में कुंभ का योग होता है। इसी प्रकार जिस समय गुरु वृश्चिक राशि पर और सूर्य तुला राशि पर स्थित हो, तो उस समय उज्जैन में कुंभ का योग बनता है।

पौराणिक आख्यान के अनुसार माना जाता है कि समुद्र मंथन में निकले अमृत कलश को लेकर जब धन्वंतरि प्रकट हुए, तो अमृत को पाने की लालसा में देवताओं और दानवों के बीच छीना-झपटी होने लगी। जब अमृत से भरा कलश लेकर देवता भागने लगे, तो उस कलश को चार स्थलों पर रखा गया। इससे कलश से अमृत की कुछ बूंदें छलक कर नीचे गिर पड़ीं। जिन-जिन स्थानों पर अमृत की ये बूंदें गिरीं, वे चार स्थान प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन हैं। दूसरी मान्यता के अनुसार अमृत के घड़े को लेकर गरुड़ आकाश मार्ग से उड़ चले। दानवों ने उनका पीछा किया और छीना-झपटी में घड़े से अमृत की बूंदें चार स्थानों पर टपक पड़ीं। जिन चार स्थलों पर अमृत की बूंदें छलक कर गिरीं उन्हें प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन के नाम से जाना जाता है। इसीलिए इन चार स्थलों पर ही अभी तक कुंभ का मेला लगता है, जहां श्रद्धालु स्नान कर पुण्य लाभ प्राप्त करते हैं।

118. दस अवतारों की अवधारणा क्यों?

श्रीमद्भगवद्गीता 4/7-8 में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूं। अर्थात् साकार रूप में लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूं। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए, पाप कर्म करने वालों का विनाश करने के लिए और धर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूं।'

यों तो हिंदू धर्म में भगवान् के असंख्य अवतारों को स्वीकार किया गया है, लेकिन उनमें से 108 अवतारों की मान्यता है। इनमें से भगवान् विष्णु ने धरती की सुख-शांति की स्थापना और सृष्टि के पालन के लिए जिन दस अवतारों को धारण किया वे निम्नानुसार हैं–

1. मत्स्य
2. कच्छप
3. वाराह
4. नृसिंह
5. वामन
6. परशुराम
7. राम
8. कृष्ण
9. बुद्ध
10. कल्कि

मत्स्य या मीन अवतार: वैवस्वत मनु की प्रलय से रक्षा करने के लिए भगवान् ने मछली का अवतार धारण किया था। इसके माध्यम से बीज से वृक्ष बनने जैसा उदाहरण प्रस्तुत किया और बताया कि छोटे साधन भी उच्च उद्देश्यों के साथ जुड़ने पर महान हो जाते हैं।

कच्छप या कछुए का अवतार: विष्णु का यह अवतार कूर्मावतार के नाम से भी जाना जाता है। इसमें अमृत मंथन के लिए कछुए का रूप धारण कर अपनी पीठ पर समुद्र मंथन की सारी प्रक्रिया का भार उठाकर सहयोग और अनवरत श्रम की महत्ता बतलाई गई है।

वाराह अवतार में जब पृथ्वी को हिरण्याक्ष राक्षस ने हर लिया, तो उससे मल्लयुद्ध करके उसके आधिपत्य का शमन किया और पृथ्वी को मुक्त कराकर सर्वसाधारण को संपदा उपलब्ध कराई।

नृसिंह या नरसिंह अवतार में मानव शरीर का आधा भाग और आधा भाग शेर का बनाकर दैत्यराज हिरण्यकशिपु का वध किया। प्रह्लाद को बचाकर उसका अधिकार दिलवाया। इस अवतार में साम, दाम, दंड का ही नहीं, भेद नीति अर्थात् कूटनीति का प्रयोग किए जाने का औचित्य भी बतलाया गया है।

वामन अवतार लेकर दैत्यराज बलि के यज्ञ अनुष्ठान को नष्ट किया और आकाश, पाताल, पृथ्वी आदि को मुक्त कराया। असुरों की प्रसुप्त सद्भावना को जगाया और वैभव को जनहित में वितरण करने में सफलता पाई।

परशुराम अवतार में क्षत्रियों के अत्याचारों से ब्राह्मणों और पृथ्वी को स्वतंत्र किया। पशु और पिशाच वर्ग के लोगों को न तो विजय से सुधारा जा सकता है और न शिक्षा, क्षमा से। इसलिए उनका वध किया।

राम के अवतार में रावण का वध कर श्रद्धालु जनों में मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए। कष्ट सहकर भी वे धर्म धारण के प्रतिपादन में निरत रहे। इसलिए सजीव धर्म पुरुष कहलाए। असुरता हटाकर देवत्व की वृद्धि की।

कृष्ण का अवतार लेकर अत्याचारी कंस का वध किया। वे नीति पुरुष कहलाए, क्योंकि उन्होंने नीति को क्रिया के साथ नहीं, लक्ष्य के साथ जोड़ा।

बुद्ध का अवतार ज्ञान और तप के आधार पर धारण किया। पुराणों में जिस बुद्धावतार का वर्णन है, वह महाराज शुद्धोदन के पुत्र अमिताभ गौतम बुद्ध ही हैं। शांति और अहिंसा का संदेश दिया। मनुष्य को समस्त दुखों से छुटकारा मिले, भगवान् बुद्ध की शिक्षा का यही लक्ष्य था।

कल्कि को अंतिम अवतार कहा गया है, जो कलियुग में तब अवतीर्ण होगा–जब संसार में अनाचार और अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर होंगे। इसमें अभी काफी वर्ष शेष बताए जाते हैं। इस अवतार के बाद पुनः सत्युग आएगा।

119. तीर्थों का महत्त्व क्यों?

शास्त्रकार ने कहा है–**तारयितुं समर्थः इति तीर्थः।** अर्थात् जो तार देने, पार कर देने में समर्थ होता है, वह तीर्थ कहलाता है। तरना सद्विचारों, सत्कर्मों एवं संतों के सत्संग से ही हो सकता है। जिन स्थानों में देवी-देवताओं की शक्तियों का प्रभाव, प्राकृतिक सौंदर्य, विशेष तेजोमय जल, संतों, महात्माओं का सत्संग आदि प्राप्त होते हैं, उन्हें ही तीर्थस्थान कहा जाता है। तीर्थयात्रा के पुण्यफल का उल्लेख धर्मशास्त्रों में अनेक बार हुआ है। शिवपुराण, पद्मपुराण व स्कंदपुराण का बहुत बड़ा भाग तीर्थ माहात्म्य से ही भरा पड़ा है। महाभारत, वेदों, पुराणों, उपपुराणों में तीर्थ करने से पापों से निवृत्ति, पुण्य संचय, मुक्ति और स्वर्ग की प्राप्ति, देवताओं की अनुकंपा, आत्मशांति, मनोकामनाओं की पूर्ति जैसे लाभ गिनाए गए हैं, जिन्हें पढ़कर धर्म प्रेमी सहज ही श्रद्धापूर्वक तीर्थयात्राएं करते हैं। **महाभारत, वन पर्व** में कहा गया है कि जो पुण्य अग्निष्टोम जैसे विशाल यज्ञों से उपलब्ध नहीं हो सकता, वह तीर्थ यात्रा से, तीर्थ सेवन से सहज सुलभ हो जाता है। अश्रद्धा युक्त मात्र पर्यटन और मनोरंजन के लिए इधर-उधर परिभ्रमण करने वाले संशयात्मा व्यक्ति इस पुण्य-फल को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते। तीर्थ यात्रा का उद्देश्य है–अंतःकरण की शुद्धि और आत्म कल्याण। अतः आत्म कल्याण के इच्छुक को तीर्थयात्रा का पुण्य लाभ लेना चाहिए।

पुलस्त्य ऋषि ने कहा है–

पुष्करे तु कुरुक्षेत्रे गंगायां मगधेषु च।
स्नात्वा तारयते जन्तुः सप्त सप्तावरांस्तथा ॥ –*महाभारत/वनपर्व 85/92*

अर्थात् पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गंगा और मगध देशीय तीर्थों में स्नान करने वाला मनुष्य अपनी सात पीछे की और सात आगे की पीढ़ियों का उद्धार कर देता है।

देवी भागवत में कहा गया है कि जिस प्रकार कृषि का फल अन्न उत्पादन है, उसी प्रकार निष्पाप बनना ही तीर्थयात्रा का प्रतिफल है।

अथर्ववेद 18/4/7 में कहा गया है कि तीर्थयात्रा करने वाले तीर्थयात्री तीर्थादि द्वारा बड़े-बड़े पापों और आपत्तियों से मुक्त होकर पुण्यलोक की प्राप्ति करते हैं।

शास्त्रकारों ने कहा है कि तीर्थ में जिसकी जैसी और जितनी श्रद्धा होती है, उसे वैसा ही फल मिलता है। 'जो यथोक्त विधि से तीर्थ यात्रा करते हैं, संपूर्ण द्वंद्वों को सहन करने वाले हैं, वे धीर पुरुष स्वर्ग में जाते हैं', ऐसा **नारदपुराण** में लिखा है–

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्।
न तेन किंचिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत्॥ –*नारदपुराण*

जो काम, क्रोध और लोभ को जीतकर तीर्थ में प्रवेश करता है, उसे तीर्थयात्रा से सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

स्कंदपुराण में तीर्थ फल के संबंध में लिखा है–

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
निर्विकाराः क्रियाः सर्वा स तीर्थफलमश्नुते ॥ –स्कंदपुराण मा. कुमा. 2/6

अर्थात् जिसके हाथ, पैर और मन भली-भांति संयम में हों तथा जिसकी सभी क्रियाएं निर्विकार भाव से संपन्न होती हों, वही तीर्थ का पूरा फल प्राप्त करता है।

स्कंदपुराण में तीर्थ के संबंध में कहा गया है कि सत्य तीर्थ है। क्षमा करना तीर्थ के समान फलदायक है। इंद्रियों पर नियंत्रण करना तीर्थ के समान उपकारी है। सब प्राणियों पर दया करना तीर्थ के समान पुण्य देने वाला है और सरल जीवन भी तीर्थ ही समझना चाहिए। तीर्थों में सबसे श्रेष्ठ है अंतःकरण की अत्यंत विशुद्धि।

यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनस्तु सुसंयते।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिसंशयः।
हेतुनिष्ठाश्च पंचैते न तीर्थफलभागिनः ॥ *–भविष्यपुराण, उत्तरा. 122/7-8*

अर्थात् जिसके हाथ, पैर, मन और वाणी सुसंयत हैं तथा जिसकी विद्या, कीर्ति और तपस्या पूरी है, उसे ही तीर्थ का फल मिलता है। श्रद्धारहित, पापी, संशयग्रस्त, नास्तिक और तार्किक–इन पांच प्रकार के लोगों को तीर्थ का फल नहीं मिलता।

पद्मपुराण में कहा गया है कि तीर्थों में ब्रह्मपरायण, साधु-सज्जन मिलते हैं। उनका दर्शन मनुष्यों की पाप राशि को जला डालने के लिए अग्नि के समान है।

तीर्थ के संबंध में शास्त्रकारों का यह भी कहना है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद ये सब मन के मैल हैं। मन का निर्मल रहना परम तीर्थ है। महाभारत समाप्त होने के उपरांत धर्मराज युधिष्ठिर ने तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया। साथ में चारों भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव और द्रोपदी भी थी। प्रस्थान करने के पूर्व वे भगवान् श्रीकृष्ण के पास गए, तो उन्होंने अपना कमंडलु देते हुए कहा–'जहां-जहां तीर्थ स्थानों, नदियों और सरोवरों में आपको स्नान करने का अवसर मिले, वहां-वहां इसे भी डुबो देना।' काफी दिनों बाद जब वे लौटे, तो उन्होंने कमंडलु लौटाते हुए श्रीकृष्ण को बताया कि उसे सभी स्नान के स्थानों पर डुबोया गया है। इस पर कृष्ण ने उसे जमीन पर पटक कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया और प्रसाद के रूप में उपस्थित लोगों में वितरित कर दिया। जिसने भी प्रसाद चखा, मुंह कड़वा हो गया। लोगों को थूकते और मुंह बनाते देख श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से पूछा–'यह इतने तीर्थों में घूमकर आ रहा है और स्नान भी कर आया है फिर भी इसका कड़वापन दूर क्यों नहीं हुआ?'

धर्मराज ने कहा–'आप भी कैसी बात करते हैं, कहीं धोने मात्र से कमंडलु का कड़वापन निकल सकता है?'

भगवान् कृष्ण ने समाधान करते हुए कहा–'यदि ऐसा है तो तीर्थ स्नान का बाह्योपचार करने मात्र से अंतः का परिष्कार, धुलाई, मार्जन कैसे हो सकता है?' धर्मराज ने अपनी गलती सुधारी और आत्मशोधन की गरिमा को जाना।

120. चारों धामों की यात्रा का धार्मिक महत्त्व क्यों?

जिस प्रकार हिन्दू संस्कृति के चार वेद हैं, चार वर्ण हैं, चार दिशाएं हैं, ठीक उसी प्रकार चार धाम हैं। भारत की पवित्र भूमि में पूर्व में जगन्नाथ पुरी, पश्चिम में द्वारका पुरी, दक्षिण में रामेश्वरम् और उत्तर में बद्रीनाथ धाम स्थापित हैं।

जगन्नाथ पुरी को अनेक वैष्णव संतों ने अलौकिक तीर्थ धाम माना है। यहां पर महाप्रभु श्रीकृष्ण ने अपने जीवन के कुछ दिन बिताए थे। ऐसा माना जाता है कि जगन्नाथ पुरी में सभी धर्मों के लोग एक साथ बैठकर भोजन करते हैं, जिससे तीर्थधाम करने वालों का पुण्य बढ़ता है। जगन्नाथ का शाब्दिक अर्थ जगत के नाथ यानी भगवान् विष्णु। जगन्नाथ मंदिर में प्रमुख प्रतिमा विष्णु/कृष्ण की है। साथ ही बलराम और सुभद्रा की मूर्तियां भी प्रतिष्ठित हैं। ये प्रतिमाएं चंदन की लकड़ी की बनी हुई हैं। कहा जाता है कि मुख्य मूर्ति में स्वयं ब्रह्माजी ने आंखें प्रदान कीं और भगवान् विष्णु की प्राणप्रतिष्ठा की। मूर्ति के भीतर एक अस्थि मंजूषा बताई जाती है, जिसे प्रति 12वें वर्ष में बदलकर नई मूर्ति में प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। कहा जाता है कि ये अस्थि- अवशेष भगवान् कृष्ण के हैं। जगन्नाथ पुरी में मार्कण्डेय, चंदन, पार्वती तालाब, श्वेतगंगा और इंद्रद्युम्न नामक पंच तीर्थ हैं।

श्री जगन्नाथजी के महाप्रसाद की महिमा भुवन विख्यात है। इसे व्रत-पर्वादि के दिन भी बिना किसी छुआ-छूत दोष के ग्रहण करने का विधान है। यह भगवत्प्रसाद अन्न या पदार्थ नहीं होता, बल्कि चिन्मय तत्त्व है।

द्वारका पौराणिक, ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्त्व का स्थान है। कहा जाता है कि मथुरा छोड़ने के बाद भगवान् कृष्ण ने अपने भाई बलराम तथा यादवों के साथ द्वारका आकर अपनी नई राजधानी बनाई थी। आठवीं शताब्दी में यहां आदि शंकराचार्य ने सनातन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए द्वारकापीठ की स्थापना की। तब से यह नगर भारत के चार धामों में गिना जाता है। द्वारकाधीश मंदिर के हरिगृह का निर्माण अनिरुद्ध के पुत्र वज्रनाथ ने अपने बाबा कृष्ण की स्मृति में कराया था। मंदिर के हरिगृह में भगवान् कृष्ण की एक प्रतिमा प्रतिष्ठित है। द्वारकापीठ मठ का यहां काफी धार्मिक महत्त्व बताया जाता है, क्योंकि हिंदुओं के चार धामों में से यह एक है। यहां कृष्ण की पटरानी रुक्मिणी का मंदिर स्थापत्य कला का अद्भुत नमूना है।

स्कंदपुराण प्रभासखंड में लिखा है कि द्वारका के प्रभाव से कीट, पतंगे, पशु-पक्षी तथा सर्प आदि योनियों में पड़े हुए समस्त पापी भी मुक्त हो जाते हैं, फिर जो प्रतिदिन द्वारका में रहते और जितेन्द्रिय होकर भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में उत्साहपूर्वक लगे रहते हैं, उनके विषय में तो कहना ही क्या है। द्वारका में रहने वाले समस्त प्राणियों को जो गति प्राप्त होती है, वह ऊर्ध्वरेता मुनियों को भी दुर्लभ है। द्वारकावासी का दर्शन और स्पर्श करके भी मनुष्य बड़े-बड़े पापों से मुक्त हो स्वर्गलोक में निवास करते हैं। वायु द्वारा उड़ाई गई द्वारका की रज पापियों को मुक्ति देने वाली कही गई है, फिर साक्षात् द्वारका की तो बात ही क्या। द्वारका में जो होम, जप, दान और तप किए जाते हैं, वे सब भगवान् श्रीकृष्ण के समीप कोटि गुना एवं अक्षय होते हैं।

रामेश्वरम् के संबंध में मान्यता है कि भगवान् श्रीराम जब लंका जीतकर लौटे, तो यहीं पर शिव के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी। रामायण के अनुसार राक्षसों के विरुद्ध युद्ध में विजय के पूर्व भगवान् राम ने यहां स्नान कर शिव की आराधना की थी। कोतंडरमर मंदिर पर राक्षसराज रावण के भाई विभीषण ने भगवान् राम के समक्ष आत्मसमर्पण कर उनका संरक्षण प्राप्त किया था। धनुषकोटि मंदिर में राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान व विभीषण की मूर्तियां हैं। रामनाथ स्वामी मंदिर का गलियारा भारत के मंदिरों में सबसे बड़ा माना गया है। यह मंदिर वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूनों से युक्त है।

द्वादश ज्योतिर्लिंगों में रामेश्वर की गणना की जाती है। स्कंदपुराण ब्रह्मखंड में लिखा है कि भगवान् श्रीराम द्वारा बंधवाए हुए सेतु के कारण रामेश्वर तभी तीर्थों तथा क्षेत्रों में उत्तम है। उस सेतु के दर्शन मात्र से संसार सागर से मुक्ति हो जाती है तथा भगवान् विष्णु एवं शिव में भक्ति तथा पुण्य की वृद्धि होती है। उसके कायिक, वाचिक व मानसिक कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं। सेतुबंध समस्त देवता रूप कहा गया है। सेतु, श्री रामेश्वर लिंग का चिंतन करने मात्र से मनुष्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। सेतु की बालू में शयन करने से चिपकी बालू कणों के बराबर ब्रह्महत्याओं का नाश हो जाता है।

बदरीनाथ नर और नारायण पर्वतों के बीच ऋषिगंगा और अलकनंदा नदियों के संगम पर स्थित है। महाभारत, स्कंदपुराण व अन्य पुराणों में बदरीनाथ के सौंदर्य की चर्चा की गई है। बदरीनाथ मंदिर में मुख्य मूर्ति भगवान् विष्णु की है। शालग्राम पत्थर पर बनी यह मूर्ति कला की दृष्टि से बेजोड़ है। पौराणिक कथाओं के अनुसार यह मूर्ति सातवीं शताब्दी में शंकराचार्य ने एक कुंड से प्राप्त की थी। इसके सामने अलकनंदा नदी के तट पर गरम पानी का झरना है। इसे तप्त कुंड कहते हैं, जिसमें श्रद्धालु स्नान कर अत्यंत सुखद अनुभूति पाते हैं। भीम ने पांडवों को नदी पार कराने के लिए एक विशाल शिला को नदी में रखा था, जो यहां भीम शिला के नाम से जानी जाती है। कहा जाता है कि यहां की व्यास गुफा में महर्षि व्यास ने पुराणों की रचना की थी। गुफा के बाहर विशाल चट्टान किताब की भांति दिखाई देती है, जिसे व्यास पुस्तिका कहते हैं। यहां नारद कुंड और सूर्य कुंड नाम के गरम पानी के दो सरोवर भी हैं।

महाभारत में लिखा है कि अन्य तीर्थों में स्वधर्म का विधिपूर्वक पालन करते हुए मृत्यु होने पर मुक्ति होती है, लेकिन बदरीक्षेत्र के तो दर्शनमात्र से ही मुक्ति मनुष्य के हाथ में आ जाती है। बदरी ही परमतीर्थ, तपोवन तथा साक्षात् परात्पर ब्रह्म है। वही जीवों के स्वामी परमेश्वर हैं, जिन्हें जानकर शोक, मोह, चिंता तुरंत मिट जाती है। मनुष्य कहीं से भी बदरी आश्रम का स्मरण करता रहे तो वह पुनरावृत्ति वर्जित श्रीवैष्णवधाम को प्राप्त होता है।

121. तीन समय संध्या उपासना करने का विधान क्यों?

हिन्दू सनातन धर्म कर्मकांड और नित्यकर्म में संध्या उपासना को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, इसलिए हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि त्रिकाल संध्या उपासना करते थे। भगवान् श्रीराम और वसिष्ठ भी त्रिकाल संध्या करते थे। जीवन को तेजस्वी, सफल और उन्नत बनाने के लिए और वांछित फल की प्राप्ति के लिए मनुष्य को त्रिकाल संध्या अवश्य करनी चाहिए।

भगवान् मनु ने कहा है–

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवान्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च॥ *–मनुस्मृति 4/94*

अर्थात् बहुत काल तक संध्योपासना करने के कारण ही ऋषियों ने दीर्घायु, बुद्धि, यश, कीर्ति (ख्याति) और ब्रह्मतेज की प्राप्ति की थी।

कूर्मपुराण अध्याय 18 श्लोक 26 से 31 में संध्या उपासना का महत्त्व इस प्रकार से बताया गया है–'जो संध्या है वही जगत को उत्पन्न करने वाली है, मायातीत है, निष्कल है और तीन तत्त्वों से उत्पन्न होने वाली ईश्वर की पराशक्ति है। विद्वान् ब्राह्मण को पूर्वाभिमुख होकर सूर्यमंडल में प्रतिष्ठित सावित्री (गायत्री मंत्र) का ध्यान-पूर्वक जप करते हुए संध्योपासना करनी चाहिए। संध्या से हीन द्विज व्यक्ति नित्य अपवित्र और सभी कर्मों को करने के अयोग्य होता है। वह जो भी कार्य करता है, उसका कोई फल उसे प्राप्त नहीं होता। पूर्वकाल में वेद के पारंगत शांत ब्राह्मणों ने अनन्य मन से संध्योपासना करके परमगति को प्राप्त किया था। उस उपासना से योगविग्रह परमदेव की उपासना हो जाती है।'

त्रिकाल संध्या यानी प्रातःकाल (सूर्योदय से पूर्व), मध्याह्न तथा सायंकाल तीनों कालों में की जाती है और प्रत्येक संध्या उत्तम, मध्यम और अधम प्रकार की मानी जाती है।

देवीभागवत 11/16/4-5 में कहा गया है–'प्रातः संध्या तारे दीखते हों उस समय करने पर उत्तम, तारे दीखने बंद होने पर मध्यम और सूर्य निकलने पर अधम होती है और सायं संध्या सूर्य रहते तक उत्तम, सूर्यास्त के समय मध्यम और तारे दीखने के बाद कनिष्ठा होती है।'

तीनों काल की संध्या करते समय मुनि विश्वामित्र के मतानुसार पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुख करके बैठना चाहिए। सायंकाल में पश्चिम की ओर मुख करके बैठना चाहिए।

प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व समय, दोपहर बारह बजे और सूर्यास्त के समय के पहले और बाद के 10 मिनट का समय संधिकाल कहलाता है। इस समय किया हुआ जप, प्राणायाम, ध्यान, भजन बहुत लाभदायक पुण्यदायी होता है। अधिक हितकारी और उन्नति करने वाला होता है, क्योंकि इस समय हमारी सब नाड़ियों का मूल आधार सुषुम्ना नाड़ी के द्वार खुले होते हैं। ऐसे में छुपी हुई शक्तियां जागृत होने लगती हैं, जीवनी शक्ति और कुंडलिनी शक्ति के जागरण में सहयोग मिलता है। इसलिए अपनी नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए नियमित रूप से त्रिकाल संध्या करनी चाहिए।

122. पूजा में प्रयुक्त वस्तुओं का महत्त्व क्यों?

देवपूजन में पान-सुपारी, सिक्का, पानी, अक्षत (चावल), चंदन, रोली, पुष्प, दीपक, अगरबत्ती, धूपबत्ती, कुंकुम, हलदी, प्रसाद (मिष्ठान), फल आदि प्रयुक्त होते हैं। इन सबका अपना-अपना महत्त्व है। पान-सुपारी और सिक्का ऐसी वस्तुएं हैं, जिनके बिना पूजा संपन्न नहीं हो सकती। पूजा में पान और सुपारी का प्रयोग नारियल की तरह उत्तर-दक्षिण की एकता का प्रतीक है। पूजा में यह उसी प्रकार श्रेष्ठ माना गया है, जिस प्रकार स्वागत में सुपारी युक्त पान पेश किया जाता है। यह सम्मानजनक माना जाता है। ठीक वैसे ही भक्त के अंतःकरण में बैठे भगवान् की प्रतिमा के समक्ष वह सब कुछ अर्पित करता है, जो सम्मान और समर्पण का सूचक हो। चूंकि पान और सुपारी के वृक्ष दिव्य हैं, इसीलिए सभी देवताओं को प्रिय हैं।

सबसे पहले 'स्नानम् समर्पयामि' कहते हुए चम्मच से जल चढ़ाते हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि हम तन, मन, धन तथा भावना रूपी चार शक्तियों से समाज की सेवा कर सकें। बुराइयों को धोकर स्वच्छ, निर्मल और पवित्र समाज बना सकें। इसी के प्रतीक रूप में चार चम्मच जल भगवान् के चरणों में समर्पित करते हैं। 'अक्षतं समर्पयामि' कहकर जो चावल चढ़ाए जाते हैं, उसका तात्पर्य यह है कि हम जो अनाज, पैसा, संपत्ति कमाते हैं, उसमें से एक अंश भगवान् और उसके बनाए प्राणियों के लिए लगाएं। पूरा का पूरा स्वयं हजम न करें।

चंदन लगाने का तात्पर्य यह है कि हमारे जीवन का अंश-अंश चंदन की तरह खुशबूदार हो। हम दूसरों की सेवा में अपने को समर्पित करना सीखें। जो चंदन की तरह बनते हैं, वे भगवान् को प्रिय होते हैं।

'पुष्पम् समर्पयामि' कहकर जो पुष्प चढ़ा जाते हैं, उनका तात्पर्य यह है कि पुष्प की तरह ही हमारा जीवन हमेशा खिलता रहे, हंसता रहे, प्रसन्न रहे। फूल की तरह एक होकर समर्पित जीवन जीने और लोक मंगल के लिए अपना सर्वस्व सर्वत्र बिखेरने तथा अपनी सुगंध से सबको मोहित करने का गुण हम अपनाएं।

दीपक तभी प्रकाशित होता है, जब उसमें पात्र, घी और बत्ती तीनों का संयोग हो, यानी पात्रता, निष्ठा और समर्पण। घी को रोकने के लिए जैसे पात्र की आवश्यकता होती है, ठीक वैसी ही पात्रता हममें भगवान् की सेवा की होनी चाहिए। समाज सेवा और सत्कर्मों के प्रति निष्ठाभाव ज्ञान का प्रकाश जन-जन तक पहुंचाने, भटकों को राह दिखाकर उनका मार्ग प्रकाशित करने और अंधेरा दूर करने की प्रतिज्ञा लेकर हम स्वयं को भगवान् के सामने आत्मसमर्पण करके प्रार्थना करें। यही दीप जलाने का सही अर्थ है।

अगरबत्ती, धूपबत्ती जलाने से सकारात्मक जैव विद्युत चुंबकीय ऊर्जा उत्पन्न होती है, जिससे मन में नकारात्मक विचार कम आते हैं और स्वास्थ्य अच्छा रहता है। साथ ही इनके जलाने का तात्पर्य यह है कि हमारा जीवन और व्यक्तित्व ऐसा बने कि जहां कहीं भी जाएं, सबके मन में सुगंध और प्रसन्नता ला दें।

कुंकुम जो हलदी और चूने या नीबू के रस में हलदी को मिलाकर बनाया जाता है, त्वचा का शोधन और मस्तिष्क स्नायुओं का संयोजन करता है। हलदी में खून को शुद्ध करने, शरीर की त्वचा में निखार लाने, घाव को ठीक करने और अनेक बीमारियां दूर करने का गुण होता है। इसलिए यह एक महत्त्वपूर्ण औषधि भी है।

नैवेद्य प्रसाद के रूप में मिष्ठान, फल आदि भगवान् को चढ़ाए जाते हैं, इसका अर्थ यह है कि इस पृथ्वी से हमें जो कुछ भी मिल रहा है, उसे प्रभु की कृपा और प्रसाद मानें। भोग लगाकर जो प्रसाद बांटा जाता है, उसमें भगवान् का सूक्ष्मांश आस्वादित होने के कारण उसका स्वाद अपूर्व व दिव्य हो जाता है। इसकी अल्प मात्रा के सेवन से ही अपूर्व रस मिलता है। मिष्ठान का आशय यह भी है कि हमारी वाणी, व्यवहार, व्यक्तित्व, कृतित्त्व, सबमें मिठास, मधुरता आए, क्योंकि इससे प्रभु प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार पूजा में भगवान् की प्रिय वस्तुएं अर्पित की जाती हैं, ताकि वे हमारे कार्यों को निर्विघ्न पूरा करें।

आमतौर पर प्रसाद का तात्पर्य होता है जो बिना मांगे मिले, क्योंकि प्रसाद बांटने वाला स्वयं ही हाथ बढ़ाकर देता है। इसीलिए भगवान् के नाम पर बांटे जाने वाला पदार्थ का नाम प्रसाद रखा गया है। हम जानते हैं कि भगवान् की कृपा को प्रसाद रूप में प्राप्त करने का ही भक्त अभिलाषी होता है। इसीलिए वह प्रसाद के रूप में जो कुछ भी मिल जाता है, उसे सहज स्वीकार कर लेता है।

123. शनिदेव लंगड़े क्यों और उन पर तेल चढ़ाने की परंपरा क्यों?

शनिदेव दक्ष प्रजापति की पुत्री संज्ञा देवी और सूर्यदेव के पुत्र हैं। यह नवग्रहों में सबसे अधिक भयभीत करने वाला ग्रह है। इसका प्रभाव एक राशि पर ढाई वर्ष और साढ़े साती के रूप में लंबी अवधि तक भोगना पड़ता है। शनिदेव की गति अन्य सभी ग्रहों से मंद होने का कारण इनका लंगड़ाकर चलना है। वे लंगड़ाकर क्यों चलते हैं, इसके संबंध में सूर्यतंत्र में एक कथा है–एक बार सूर्य देव का तेज सहन न कर पाने की वजह से संज्ञा देवी ने अपने शरीर से अपने जैसी ही एक प्रतिमूर्ति तैयार की और उसका नाम स्वर्णा रखा। उसे आज्ञा दी कि तुम मेरी अनुपस्थिति में मेरी सारी संतानों की देखरेख करते हुए सूर्य देव की सेवा करो और पत्नी सुख भोगो। ये आदेश देकर वह अपने पिता के घर चली गई। स्वर्णा ने भी अपने आप को इस तरह ढाला कि सूर्य देव भी यह रहस्य न जान सके। इस बीच सूर्य देव से स्वर्णा को पांच पुत्र और दो पुत्रियां हुईं। स्वर्णा अपने बच्चों पर अधिक और संज्ञा की संतानों पर कम ध्यान देने लगी।

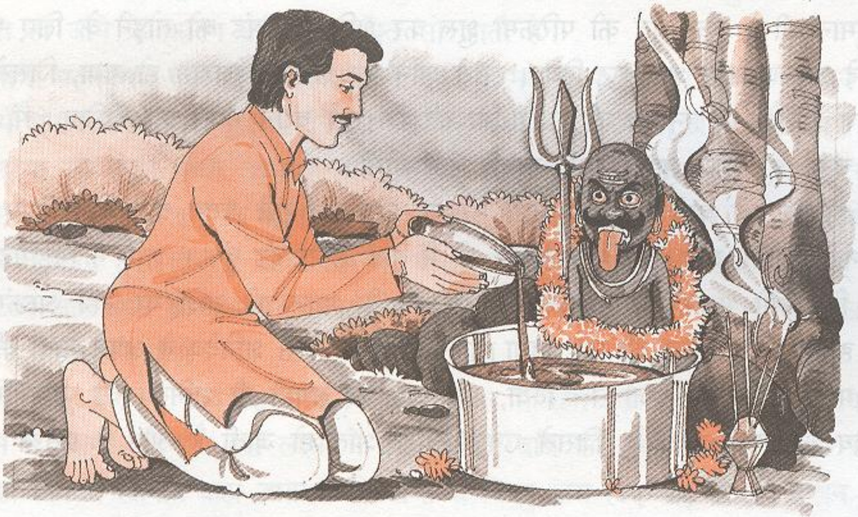

एक दिन संज्ञा के पुत्र शनि को तेज भूख लगी, तो उसने स्वर्णा से भोजन मांगा। तब स्वर्णा ने कहा कि अभी ठहरो, पहले मैं भगवान् का भोग लगा लूं और तुम्हारे छोटे भाई-बहनों को खिला दूं, फिर तुम्हें भोजन दूंगी। यह सुनकर शनि को क्रोध आ गया और उन्होंने माता को मारने के लिए अपना पैर उठाया, तो स्वर्णा ने शनि को श्राप दिया कि तेरा पांव अभी टूट जाए। माता का श्राप सुनकर शनिदेव डरकर अपने पिता के पास गए और सारा किस्सा कह सुनाया। सूर्यदेव तुरंत समझ गए कि कोई भी माता अपने पुत्र को इस तरह का शाप नहीं दे सकती। इसलिए उनके साथ उनकी पत्नी नहीं, कोई और है। सूर्य देव ने क्रोध में आकर पूछा कि 'बताओ तुम कौन हो?' सूर्य का तेज देखकर स्वर्णा घबरा गई और सारी सच्चाई उन्हें बता दी। तब सूर्यदेव ने शनि को समझाया कि स्वर्णा तुम्हारी माता नहीं है, लेकिन मां समान है।

इसलिए उनका दिया शाप व्यर्थ तो नहीं होगा, परंतु यह इतना कठोर नहीं होगा कि टांग पूरी तरह से अलग हो जाए। हां, तुम आजीवन एक पांव से लंगड़ाकर चलते रहोगे।

शनिदेव पर तेल क्यों चढ़ाया जाता है, इस संबंध में **आनंद रामायण** में एक कथा का उल्लेख मिलता है। जब भगवान् राम की सेना ने सागर सेतु बांध लिया, तब राक्षस इसे हानि न पहुंचा सकें, उसके लिए पवनसुत हनुमान को उसकी देखभाल की पूरी जिम्मेदारी सौंपी गई। जब हनुमान जी शाम के समय अपने इष्टदेव राम के ध्यान में मग्न थे, तभी सूर्य पुत्र शनि ने अपना काला कुरूप चेहरा बनाकर क्रोधपूर्वक कहा–'हे वानर ! मैं देवताओं में शक्तिशाली शनि हूं। सुना है, तुम बहुत बलशाली हो। आंखें खोलो और मुझसे युद्ध करो, मैं तुमसे युद्ध करना चाहता हूं।' इस पर हनुमान ने विनम्रतापूर्वक कहा–'इस समय मैं अपने प्रभु का ध्यान कर रहा हूं। आप मेरी पूजा में विघ्न मत डालिए। आप मेरे आदरणीय हैं, कृपा करके यहां से चले जाइए।'

जब शनि लड़ने पर ही उतर आए, तो हनुमान ने शनि को अपनी पूंछ में लपेटना शुरू कर दिया। फिर उसे कसना प्रारंभ कर दिया। जोर लगाने पर भी शनि उस बंधन से मुक्त न होकर पीड़ा से व्याकुल होने लगे। हनुमान जी ने फिर सेतु की परिक्रमा शुरू कर शनि के घमंड को तोड़ने के लिए पत्थरों पर पूंछ को झटका दे-दे कर पटकना शुरू कर दिया। इससे शनि का शरीर लहूलुहान हो गया, जिससे उनकी पीड़ा बढ़ती गई। तब शनिदेव ने हनुमान जी से प्रार्थना की कि मुझे बंधन मुक्त कर दीजिए। मैं अपने अपराध की सजा पा चुका हूं। फिर मुझसे ऐसी गलती नहीं होगी।

इस पर हनुमान् जी बोले–'मैं तुम्हें तभी छोड़ूंगा, जब तुम मुझे वचन दोगे कि श्रीराम के भक्त को कभी परेशान नहीं करोगे। यदि तुमने ऐसा किया, तो मैं तुम्हें कठोर दंड दूंगा।' शनि ने गिड़गिड़ाकर कहा–'मैं वचन देता हूं कि कभी भूलकर भी आपके और श्रीराम के भक्त की राशि पर नहीं आऊंगा। आप मुझे छोड़ दें।' तब हनुमान ने शनिदेव को छोड़ दिया। फिर हनुमान जी से शनिदेव ने अपने घावों की पीड़ा मिटाने के लिए तेल मांगा। हनुमान् ने जो तेल दिया, उसे घाव पर लगाते ही शनिदेव की पीड़ा मिट गई। उसी दिन से शनिदेव को तेल चढ़ता है, जिससे उनकी पीड़ा शांत हो जाती है और वे प्रसन्न हो जाते हैं।

124. देवताओं के सोने (देवशयन/हरिशयन) की मान्यता क्यों?

प्रति वर्ष आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी से हरिशयन अथवा देवशयन प्रारंभ होकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक चलता है। इस अवधि को चातुर्मास कहते हैं। सोए हुए देवों को जगाने से वे कुपित हो सकते हैं, इसीलिए इन चार महीनों में विवाह, गृह प्रवेश, देवी-देवता की प्राण प्रतिष्ठा, यज्ञादि संस्कार एवं अन्य शुभ कार्य बंद रहते हैं। देवउठनी एकादशी को जब देवता चार माह के शयन के बाद जागते हैं, तब सभी शुभ काम फिर से आरंभ हो जाते हैं।

पद्मपुराण एवं **श्रीमद्भागवतपुराण** आदि धार्मिक शास्त्रों में हरिशयन को योगनिद्रा भी कहा गया है। भगवान् विष्णु मानसिक तप करके अपने परम इष्ट की साधना करते हैं, वह भी योगनिद्रा ही है, जिसे शयन के नाम से जाना जाता है। हरि के रूप सूर्य-चंद्रमा, वायु और विष्णु भी हैं। हरिशयन के दृष्टिकोण से देखें, तो इन चार मास में बादल और वर्षा के कारण सूर्य-चंद्रमा का तेज क्षीण हो जाना उनके शयन का ही रूप है। वर्षाकाल के बाद वायु शांत रहती है, जो वायु के शयन का द्योतक है। चातुर्मास में पित्त स्वरूप अग्नि की गति शांत हो जाने के कारण शरीरगत शक्ति सो जाती है।

विष्णुपुराण, पद्मपुराण एवं **श्रीमद्भागवतपुराण** आदि के मतानुसार भगवान् विष्णु ने वामन रूप में दैत्यराज बलि के यज्ञ में दान स्वरूप तीन पग धरती देने का वचन लिया। विष्णु ने अपना विराट् रूप धारण कर वचनानुसार पहला पग बढ़ाया, तो संपूर्ण पृथ्वी, आकाश और सभी दिशाओं को ढक लिया। दूसरे पग में सारा स्वर्ग लोक ले लिया। फिर तीसरा पग रखने के लिए बलि से जगह मांगी, तो अपना वचन पूरा करने के लिए बलि ने स्वयं को समर्पित करते हुए विष्णु से अपने सिर पर तीसरा पग रखने को कहा। इससे भगवान् विष्णु ने प्रसन्न होकर सत्यपालन और त्याग के लिए उसे महादानी के रूप में सम्मानित करके पाताल लोक का अधिपति बना दिया और वर मांगने को कहा।

वर मांगते हुए बलि ने कहा कि आप नित्य मेरे महल में रहें। इस पर विष्णु ने उन्हें वरदान दे दिया। बलि के बंधन में स्वामी को बंधा देख लक्ष्मी ने उसे रक्षासूत्र बांध कर भाई बना लिया और स्वामी को वचन मुक्त करने का निवेदन किया। कहा जाता है कि तभी से विष्णु द्वारा दिए गए वर का पालन करने हेतु तीनों देवता क्रमशः 4-4 माह सुतल में निवास करते हैं। इस प्रकार भगवान् विष्णु देवशयनी एकादशी से देवउठनी एकादशी तक, शंकर महा शिवरात्रि तक और ब्रह्माजी शिवरात्रि से देवशयनी एकादशी तक सुतल पर निवास करते हैं। पौराणिक आख्यानों के अनुसार हरिशयन के दौरान भगवान् विष्णु क्षीरसागर में शेषशय्या पर योगनिद्रा में लीन हो जाते हैं और उनका दूसरा रूप राजा बलि के यहां सुतल लोक में उपस्थित रहता है।

125. देवताओं के वाहन अलग-अलग पशु-पक्षी क्यों?

हम ऋषि-मुनियों के श्रीमुख से सुनते आए हैं कि जिस देवी-देवता में जिस गुण का आरोप किया जाता था, उसे उसी गुणवाला कोई पशु या पक्षी वाहन के रूप में दिया गया था। इसीलिए उनके वाहन भी पृथक्-पृथक् हैं। हमारे धार्मिक ग्रंथों में हर एक देवी या देवता के विशेष वाहन का ब्यौरा मिलता है, जैसे–देवी भागवत के अनुसार लक्ष्मी का वाहन उल्लू, दुर्गा का सिंह तथा शिवपुराण के अनुसार गणेश का चूहा, शिव का वृषराज नंदीश्वर आदि हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इन वाहनों के रूप आदि में अत्यंत ही अद्‌भुत रहस्य व सूक्ष्म प्रेरणाएं छिपी हुई हैं, जिन्हें हर एक को जानना चाहिए।

गणेशजी का वाहन चूहा स्वच्छंदता की स्थिति में अस्थिर होने का प्रतीक है। मन रूपी चूहे की एकाग्रता हो जाने पर संसार के सभी सुखों की प्राप्ति व ईश्वर तक पहुंचा जा सकता है। आत्मज्ञान से चंचलता पर लगाम लगती है। कहा भी गया है कि मन ही मानव के बंधन और मोक्ष का कारण है।

गणेशपुराण के अनुसार कौंच गंधर्व के अपराध करने पर ऋषि सौभरि ने उन्हें श्राप देकर चूहा बना दिया था। ऋषि से शापमोचन की विनती करने पर उसे पाराशर ऋषि के यहां पैदा होने वाले गजानन का वाहन बनकर स्वर्ग प्राप्ति का आशीर्वाद मिला। चूहे द्वारा सभी को परेशान करने पर गणेश ने अपना पाश अभिमंत्रित कर उसे बांध लिया। तब उसकी गणेश स्तुति से प्रसन्न होकर उसे गणेश ने अपना वाहन बना लिया।

शिवजी का वाहन वृषराज नंदीश्वर धर्म का बोधक है। नंदी का सफेद रंग सत्वगुण का प्रतीक है और नंदी के चार पैर धर्म के चार स्तंभ–दया, दान, तप और शौच हैं। इनका पालन करके हम शिवलोक की प्राप्ति कर सकते हैं।

सरस्वती का वाहन हंस पक्षी श्रेष्ठ के रूप में सर्वपूज्य है। नीर-क्षीर-विवेक एवं मोती चुगना उसकी विशेषता है। इन गुणों को अपनाकर ब्रह्मपद पाया जा सकता है।

लक्ष्मी का वाहन उल्लू आध्यात्मिक दृष्टि से दिवांधता का प्रतीक है। जब कोई भगवान् विष्णु को छोड़कर अकेली लक्ष्मी का आह्वान करता है, तब उनका वाहन भरे दिन में न देख सकने वाला विनाश का प्रतिनिधि उल्लू पक्षी होता है अन्यथा वह पतिदेव के साथ गरुड़ पर सवार होकर ही जाती हैं। सांसारिक जीवन में लक्ष्मी यानी धन-दौलत के पीछे बिना सोचे-समझे भागने वाले व्यक्ति आत्मज्ञान रूपी सूर्य को नहीं देख पाते हैं।

दुर्गा का वाहन सिंह (शेर) बल और पौरुष का प्रतीक है। चूंकि सिंह हिंसक प्राणी है, इसलिए देवी के उपासक में सिंहत्व के गुण आ जाते हैं। दुर्गा के उपासक शक्तिशाली होकर मदांध भी होते देखे गए हैं। अपने शत्रुओं का दमन करने में वे समर्थ होते हैं।

विष्णु का वाहन गरुड़ दूर दृष्टि के लिए प्रसिद्ध है। अद्वितीय सामर्थ्य के कारण दूर तक उड़ने में सक्षम होता है। गरुड़ ही वेद का प्रतीक है। इसमें कायाकल्प करने की अद्भुत क्षमता है।

मृत्यु के देवता **यमराज** का वाहन भैंसा है, जो देखने में भयंकर लगता है। इसे प्रेत का प्रतिरूप मानने के कारण इसके दर्शन करना अशुभ माना गया है।

125. देवताओं के वाहन अलग-अलग पशु-पक्षी क्यों?

हम ऋषि-मुनियों के श्रीमुख से सुनते आए हैं कि जिस देवी-देवता में जिस गुण का आरोप किया जाता था, उसे उसी गुणवाला कोई पशु या पक्षी वाहन के रूप में दिया गया था। इसीलिए उनके वाहन भी पृथक्-पृथक् हैं। हमारे धार्मिक ग्रंथों में हर एक देवी या देवता के विशेष वाहन का ब्यौरा मिलता है, जैसे—देवी भागवत के अनुसार लक्ष्मी का वाहन उल्लू, दुर्गा का सिंह तथा शिवपुराण के अनुसार गणेश का चूहा, शिव का वृषराज नंदीश्वर आदि हैं। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इन वाहनों के रूप आदि में अत्यंत ही अद्‌भुत रहस्य व सूक्ष्म प्रेरणाएं छिपी हुई हैं, जिन्हें हर एक को जानना चाहिए।

गणेशजी का वाहन चूहा स्वच्छंदता की स्थिति में अस्थिर होने का प्रतीक है। मन रूपी चूहे की एकाग्रता हो जाने पर संसार के सभी सुखों की प्राप्ति व ईश्वर तक पहुंचा जा सकता है। आत्मज्ञान से चंचलता पर लगाम लगती है। कहा भी गया है कि मन ही मानव के बंधन और मोक्ष का कारण है।

गणेशपुराण के अनुसार क्रौंच गंधर्व के अपराध करने पर ऋषि सौभरि ने उन्हें श्राप देकर चूहा बना दिया था। ऋषि से शापमोचन की विनती करने पर उसे पाराशर ऋषि के यहां पैदा होने वाले गजानन का वाहन बनकर स्वर्ग प्राप्ति का आशीर्वाद मिला। चूहे द्वारा सभी को परेशान करने पर गणेश ने अपना पाश अभिमंत्रित कर उसे बांध लिया। तब उसकी गणेश स्तुति से प्रसन्न होकर उसे गणेश ने अपना वाहन बना लिया।

शिवजी का वाहन वृषराज नंदीश्वर धर्म का बोधक है। नंदी का सफेद रंग सत्वगुण का प्रतीक है और नंदी के चार पैर धर्म के चार स्तंभ—दया, दान, तप और शौच हैं। इनका पालन करके हम शिवलोक की प्राप्ति कर सकते हैं।

सरस्वती का वाहन हंस पक्षी श्रेष्ठ के रूप में सर्वपूज्य है। नीर-क्षीर-विवेक एवं मोती चुगना उसकी विशेषता है। इन गुणों को अपनाकर ब्रह्मपद पाया जा सकता है।

लक्ष्मी का वाहन उल्लू आध्यात्मिक दृष्टि से दिवांधता का प्रतीक है। जब कोई भगवान् विष्णु को छोड़कर अकेली लक्ष्मी का आह्वान करता है, तब उनका वाहन भरे दिन में न देख सकने वाला विनाश का प्रतिनिधि उल्लू पक्षी होता है अन्यथा वह पतिदेव के साथ गरुड़ पर सवार होकर ही जाती हैं। सांसारिक जीवन में लक्ष्मी यानी धन-दौलत के पीछे बिना सोचे-समझे भागने वाले व्यक्ति आत्मज्ञान रूपी सूर्य को नहीं देख पाते हैं।

दुर्गा का वाहन सिंह (शेर) बल और पौरुष का प्रतीक है। चूंकि सिंह हिंसक प्राणी है, इसलिए देवी के उपासक में सिंहत्व के गुण आ जाते हैं। दुर्गा के उपासक शक्तिशाली होकर मदांध भी होते देखे गए हैं। अपने शत्रुओं का दमन करने में वे समर्थ होते हैं।

विष्णु का वाहन गरुड़ दूर दृष्टि के लिए प्रसिद्ध है। अद्वितीय सामर्थ्य के कारण दूर तक उड़ने में सक्षम होता है। गरुड़ ही वेद का प्रतीक है। इसमें कायाकल्प करने की अद्‌भुत क्षमता है।

मृत्यु के देवता **यमराज** का वाहन भैंसा है, जो देखने में भयंकर लगता है। इसे प्रेत का प्रतिरूप मानने के कारण इसके दर्शन करना अशुभ माना गया है।

126. ईश्वर के सर्वव्यापी होने की मान्यता क्यों?

जैसे बीज में छिपा वृक्ष दिखाई नहीं देता, दूध में घी मौजूद होते हुए भी दिखाई नहीं देता, तिल में तेल दिखाई नहीं देता, फूल की खुशबू दिखाई नहीं देती, शरीर में होने वाली पीड़ा दिखाई नहीं देती, अपनी बुराई दिखाई नहीं देती, वैसे ही ईश्वर सर्वत्र व्यापक रूप से विद्यमान होने पर भी दिखाई नहीं देता।

जैसे हमारे शरीर में आत्मा व्याप्त और विद्यमान रहती है, परमात्मा समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त और विद्यमान रहता है, फिर भी हमारे अज्ञान के कारण वह हमसे बहुत दूर होता है और ज्ञान व भक्ति से इसे हमारे बहुत निकट अनुभव किया जा सकता है। जैसे जमीन में पानी सब जगह रहता है, परंतु उसका प्राप्ति स्थान कुआं है, ऐसे ही भगवान् सब जगह है, पर उसका प्राप्ति स्थान हृदय है।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है–'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्' गीता 13/17 तथा 'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो' गीता 15/15। यद्यपि मैं सब जगह समान भाव से परिपूर्ण हूं, फिर भी सबके हृदय में अंतर्यामी रूप से मेरी विशेष स्थिति है, अतएव हृदय मेरी उपलब्धि का विशेष स्थान है। अध्याय 13 के श्लोक 13 में लिखा है–

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

अर्थात् ईश्वर सब ओर हाथ-पैर वाला, सब ओर नेत्र, सिर तथा मुख वाला एवं सब ओर से कान वाला है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहां वह न हो, ऐसा कोई शब्द नहीं जिसे वह न सुनता हो, ऐसा कोई दृश्य नहीं, जिसे वह न देखता हो, ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे वह न ग्रहण करता हो और ऐसी कोई जगह नहीं जहां वह न पहुंचता हो।

जैसे **यजुर्वेद** में कहा गया है–

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत्। –*यजुर्वेद 40/1*

अर्थात् इस सारे संसार के सब पदार्थों में ईश्वर व्यापक है।

श्वेताश्वतर उपनिषद् का वचन है–

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतांतरात्मा।

अर्थात् ईश्वर एक ही है, वह सब प्राणियों के अंदर छिपा हुआ है, वह सर्वव्यापक और सब प्राणियों में आत्मा के रूप में विद्यमान है।

ईश्वर के भक्तों को पहले दृढ़ निश्चय कर ईश्वर के होने को स्वीकारना चाहिए। वह अपने भक्तों को अवश्य मिलते हैं। फिर विश्वास पूर्वक निरंतर ईश्वर का ध्यान करते हुए उसे प्राप्त करना चाहिए। ईश्वर आपके हृदय में ही विराजमान है, जो उसे मन से चाहता है, अवश्य पा लेता है।

नारदपुराण के पूर्वखंड अध्याय 11 में श्लोक 57 और 64 के मध्य भगवान् का कहना है कि राग, द्वेष, गुणों में दोष दृष्टि रखने वाले, पाखंड से रहित (दूर) मेरे भक्त मुझे हृदय में निरंतर धारण करते हैं। जलन से हीन, पति प्राणा, पतिव्रता स्त्री, माता-पिता, गुरु और अतिथि की सेवा करने वाले, ब्राह्मणों के हितैषी, पुण्य तीर्थ तथा सत्संग के प्रेमी, पर धन, पर स्त्री से बचे परोपकारी पुरुष तथा अन्न और जल का दान करने वाले भी मुझे निरंतर हृदय में धारण किए रहते हैं।

सूर्य का प्रकाश सब जगह समान रूप से विस्तृत रहने पर भी दर्पण आदि में इसके प्रतिबिंब की विशेष अभिव्यक्ति होती है एवं कांच के लेंस में उसका तेज प्रत्यक्ष प्रकट होकर अग्नि पैदा कर देता है। ऐसे ज्ञानी व्यक्ति जिनका अंतःकरण शुद्ध और स्वच्छ होता है, उनके हृदय में मेरा प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

बहिरंतश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ —*श्रीमद्‌भगवद्‌गीता 13/15*

अर्थात् वह परम सत्य परमात्मा, जड़ और चेतन सभी में भीतर व बाहर विद्यमान है। अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण वह भौतिक इंद्रियों से देखा व जाना नहीं जा सकता।

जैसे सूर्य की किरणों में स्थित हुआ जल सूक्ष्म होने से साधारण मनुष्यों के जानने में नहीं आता। इसी प्रकार परमात्मा श्रद्धालु की आत्मा में होने से अत्यंत समीप है और श्रद्धा रहित, अज्ञानी पुरुषों के लिए न जानने के कारण बहुत दूर है।

शास्त्रकार ने लिखा है–

ब्रह्मैवेदभमृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्व च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ —*मुंडक 2/2/11*

अर्थात् वह अमृत स्वरूप परब्रह्म ही सामने है। ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दाईं ओर तथा बाईं ओर, नीचे की ओर तथा ऊपर की ओर भी फैला हुआ है। यह जो संपूर्ण जगत है, वह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।

127. राम नाम का जप क्यों?

र+आ+म=राम मधुर, मनोहर, मनोरंजक, विलक्षण, चमत्कारी जिसकी महिमा तीन लोक से न्यारी है। रामचरितमानस के बालकांड के वंदना प्रसंग में कहा गया है–

'नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू।' मतलब यह है कि कलियुग में न तो कर्म का भरोसा है, न भक्ति का और न ज्ञान का ही, बल्कि केवल राम नाम ही एकमात्र सहारा है।

पद्मपुराण में कहा गया है–

रामेति नाम यच्छ्रोत्रे विश्रम्भादागतं यदि। करोति पापसंदाहं तूलं वह्निकणो यथा॥

–पद्मपुराण, पाताल. खं. 20/80

अर्थात् जिसके कानों में 'राम' यह नाम अकस्मात् भी पड़ जाता है, उसके पापों वह वैसे ही को जला देता है, जैसे अग्नि की चिंगारी रुई को।

पद्मपुराण में यह भी लिखा–

राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन्।
स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः॥
कुरुक्षेत्रं तथा काशी गया वै द्वारका तथा।
सर्व तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः॥ *–पद्मपुराण, उत्तरा 71/20-21*

अर्थात् राम, राम, राम, राम–इस प्रकार बार-बार जप करने वाला चाण्डाल हो तो भी वह पवित्रात्मा हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। उसने केवल नाम का उच्चारण करते ही कुरुक्षेत्र, काशी, गया और द्वारका आदि संपूर्ण तीर्थों का सेवन कर लिया।

स्कंदपुराण में भगवान् शंकर देवी पार्वती से कहते हैं–

रामेति द्वयक्षरजपः सर्वपापापनोदकः।
गच्छंस्तिष्ठन् शयनो वा मनुजो रामकीर्तनात्॥
इड निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत्। *–स्कंदपुराण, नागरखंड*

अर्थात् 'राम'–यह दो अक्षरों का मंत्र जपे जाने पर समस्त पापों का नाश करता है। चलते, बैठते, सोते (जब कभी भी) जो मनुष्य राम-नाम का कीर्तन करता है, वह यहां कृतकार्य होकर जाता है और अंत में भगवान् हरि का पार्षद बनता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि जो शक्ति भगवान् की है, उससे भी अधिक शक्ति भगवान् के नाम की है। नाम जप की तरंगें हमारे अंतर्मन में गहराई तक उतरती हैं। इससे मन और प्राण पवित्र हो जाते हैं, शक्ति-सामर्थ्य प्रकट होने लगती है, बुद्धि का विकास होने लगता है, सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, मनोवांछित फल मिलता है, सारे कष्ट दूर होते हैं, संकट मिट जाते हैं, मुक्ति मिलती है, भगवत्प्राप्ति होती है, भय दूर होते हैं, लेकिन जरूरत है, तो बस सच्चे हृदय और पवित्र मन से भगवन्नाम लेने की।

128. (भगवान् का) भजन-कीर्तन और प्रार्थना क्यों?

शस्त्रों में लिखा है कि–'भजनस्य लक्षणं रसनम्' अर्थात् अंतरात्मा का रस जिसमें उभरे, उसका नाम है–भजन, यानी हृदय में जो आनंद वस्तु, व्यक्ति या भोग-सामग्री के बिना भी आता है, वही भजन का रस है।

रामचरितमानस में तुलसीदास ने 7/49/1-4 श्लोक में कहा है कि जो साधक भगवान् का विश्वास पाने के लिए भजन करता है, प्रभु अपनी अहेतुकी कृपा से उसे अपना विश्वास प्रदान करके उसके जीवन को सफल बना देते हैं।

पद्मपुराण उत्तराखंड में कहा गया है–

नाहं वसामि वैकुंठे योगिनांहृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद॥

–पद्मपुराण उ. 14/23

अर्थात् हे नारद ! मैं न तो वैकुंठ में ही रहता हूं और न योगियों के हृदय में ही रहता हूं। मैं तो वहीं रहता हूं, जहां प्रेमाकुल होकर मेरे भक्त मेरे नाम का कीर्तन किया करते हैं। मैं सर्वदा लोगों के अंतःकरण में विद्यमान रहता हूं।

शास्त्रकार ने कहा है–**मुक्तिः ददाति कश्चित् न भक्तियोगम्** अर्थात् स्वयं भगवान् भी भजन करने वालों को मुक्ति सुलभ कर देते हैं, पर भक्ति सबको नहीं देते।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है–

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ *–श्रीमद्भगवद्गीता 9/30*

अर्थात् यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव (शुद्ध मन) से मेरा भक्त होकर मुझे भजता है, तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है।

अर्थात् उसने भली भांति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है। ऐसा व्यक्ति थोड़े ही दिनों में धर्मात्मा होकर सुख-शांति पाता है। आगे भी उनका कहना है–

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम। *–श्रीमद्भगवद्गीता 9/33*

अर्थात् हे अर्जुन ! तू इस विनाशी और दुखमय यानी सुखरहित और क्षणभंगुर मनुष्य शरीर को प्राप्त हुआ है। इसलिए निरंतर मेरा ही भजन कर, ताकि इसके बाहर निकल सके।

इस प्रकार नित्य प्रार्थना का बड़ा महत्त्व है। मनुष्य ही नहीं देवता भी एक-दूसरे और ईश्वर की प्रार्थना करते हैं।

प्रत्येक मानव के हृदय की प्रार्थना है–

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय। *–बृहदारण्यक उपनिषद् 1:3, 27।*

अर्थात् मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।

इसके द्वारा हम ईश्वर से अपना संबंध जोड़कर महान् विभूतियों के स्वामी बन सकते हैं और समस्त आधि-व्याधि, कष्ट, कठिनाइयों एवं रोग शोकों से मुक्ति पा सकते हैं।

ऋग्वेद में परमात्मा से प्रार्थना की गई है—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव। —*ऋग्वेद 5/2/5*

अर्थात् हे सकल जगत के उत्पन्न करने वाले ईश्वर ! तू हम सबके पापों को दूर कर और जो कल्याणकारी विचार हैं, उन्हें हमें प्रदान कर। हे कृपानिधे ! हमारे अंतःकरणों को पवित्र कर शुद्ध, बुद्ध और पवित्र बना।

रामचरितमानस में तुलसीदास ने कहा है—

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन। —*उत्तरकांड 122 ख*

जो चेतन कहं जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य। —*उत्तरकांड 119 ख*

तन ते कुलिस कुलिस तृन करई। —*लंकाकांड 35/4*

मतलब यह कि ईश्वर असंभव को संभव और संभव को असंभव बनाने में सर्वथा समर्थ है। उनमें किसी तरह की असामर्थ्य नहीं है। वह सब तरह से पूर्ण है। उनमें किंचित्मात्र भी कमी नहीं है। जब हमारा संबंध उनसे प्रार्थना के माध्यम से जुड़ जाएगा, तो उनकी सारी शक्ति हमारे में आ जाएगी।

'यदेव श्रद्धया जुहोति तदेव वीर्यवत्तरं भवति।' —छांदोग्योपनिषद्

श्रद्धापूर्वक की गई प्रार्थना ही फलवती होती है। अतः भावना जितनी सच्ची, गहरी और पूर्ण होगी, उतना ही उसका सत्परिणाम भी होगा। हम यदि आत्मविश्वास से, सच्चे मन, आर्तभाव से भगवान् को पुकारें, उनसे प्रार्थना करें, तो तत्काल लाभ मिलता है। चीरहरण के समय जब द्रौपदी सब तरफ से निराश हो गई, किसी ने उसकी प्रार्थना नहीं सुनी, तब उसने सच्चे मन से भगवान् को पुकारा, तो भगवान् कृष्ण ने उसकी लाज बचाई। प्रह्लाद की रक्षा के लिए भगवान् नरसिंह रूप में अवतरित हुए। अश्वत्थामा के द्वारा छोड़ा गया अस्त्र उत्तरा के गर्भ को नष्ट करने के लिए आने लगा, तब उत्तरा ने भगवान् को पुकारा, तो उन्होंने उसके गर्भ की रक्षा की। मार्कण्डेय की करुणामय प्रार्थना पर साक्षात् शिव ने काल से उनकी रक्षा की। मीरा, सूर, तुलसी, समर्थ रामदास, चैतन्य महाप्रभु, नरसी भगत, तुकाराम आदि संत-महात्माओं की प्रार्थनाएं भगवान् द्वारा स्वीकार की गईं और उन सबका कल्याण हुआ।

प्रार्थना से कष्ट, दुख, संताप, पश्चात्ताप, शारीरिक बीमारियां, चित्त के विकार, मन के पाप दूर हो जाते हैं। आध्यात्मिक सिद्धियां प्राप्त होती हैं, दैवी शक्तियां बढ़ती हैं, ईश्वर के प्रति विश्वास बढ़ता है, आत्मबल, आत्म-विश्वास व आत्मज्ञान में वृद्धि होती है। इस प्रकार हमारी आत्मा के लिए प्रार्थना एक टॉनिक का काम करती है।

129. कीर्तन में ताली बजाने के लाभ?

श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे, 'ताली बजाकर प्रातः काल और सायं काल हरिनाम भजा करो। ऐसा करने से सब पाप दूर हो जाएंगे। जैसे पेड़ के नीचे खड़े होकर ताली बजाने से पेड़ पर की सब चिड़ियां उड़ जाती हैं, वैसे ही ताली बजाकर हरिनाम लेने से देहरूपी वृक्ष से सब अविद्यारूपी चिड़ियां उड़ जाती हैं।

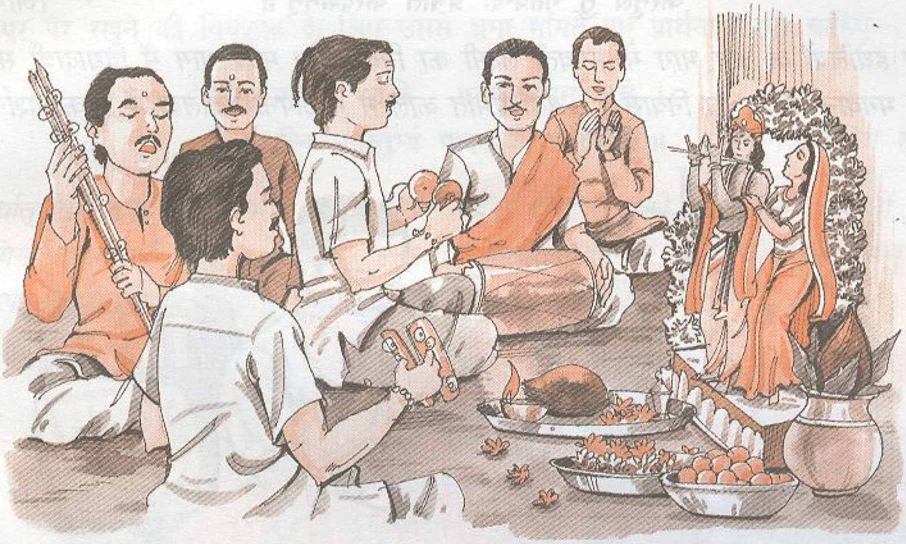

प्राचीन काल से मंदिरों में पूजा, आरती, भजन-कीर्तन आदि में समवेत् रूप से ताली बजाने की परंपरा रही है, जो हमारे शरीर को स्वस्थ रखने का एक अत्यंत उत्कृष्ट साधन है। चिकित्सकों का कहना है कि हमारे हाथों में एक्यूप्रेशर प्वाइंट्स अधिक होते हैं। ताली बजाने के दौरान हथेलियों के एक्यूप्रेशर केंद्रों पर अच्छा दबाव पड़ता है। जिससे शरीर की अनेक बीमारियों में लाभ पहुंचता है और शरीर निरोगी बनता है, अतः ताली बजाना एक उत्कृष्ट व्यायाम है। इससे शरीर की निष्क्रियता खत्म होकर क्रियाशीलता बढ़ती है। रक्त संचार की रुकावट दूर होकर अंग ठीक तरह से कार्य करने लगते हैं। रक्त का शुद्धिकरण बढ़ जाता है और हृदय रोग, रक्त नलिकाओं में रक्त का थक्का बनना रुकता है। फेफड़ों की बीमारियां दूर होती हैं। रक्त के श्वेत रक्तकण सक्षम तथा सशक्त बनने के कारण शरीर में चुस्ती, फुर्ती तथा ताजगी का एहसास होता है। रक्त में लाल रक्तकणों की कमी दूर होकर वृद्धि होती है और स्वास्थ्य सुधरता है। अतः पूजा-कीर्तन में तालबद्ध तरीके से अपनी पूरी शक्ति से ताली बजाएं और रोगों को दूर भगाएं। इससे तन्मय होने और ध्यान लगाने में भी सुविधा होगी।

130. प्रातः जगते ही हथेलियों के दर्शन क्यों?

शास्त्रों में प्रातः काल जगते ही बिस्तर पर सबसे पहले दोनों हाथों की हथेलियों (करतल) के दर्शन करने का विधान बताया गया है। दर्शन के दौरान निम्न श्लोक का उच्चारण करना चाहिए–

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम्॥ *(आचार, प्रदीप)*

अर्थात् हथेलियों के अग्र भाग में भगवती लक्ष्मी का निवास है। मध्य भाग में विद्यादात्री सरस्वती और मूल भाग में भगवान् गोविंद का निवास है। अतः प्रभात काल में मैं अपनी हथेलियों में इनका दर्शन करता हूं।

इस श्लोक में धन की अधिष्ठात्री लक्ष्मी, विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती और शक्ति के स्रोत, सद्‌गुणों के दाता, सबके पालनहार भगवान् की स्तुति की गई है, ताकि धन, विद्या और प्रभु कृपा की प्राप्ति हो।

यों तो सुबह उठते ही हमारी आंखें उनींदी होती हैं। ऐसे में यदि एकदम दूर की वस्तु या रोशनी पर हमारी दृष्टि पड़ेगी, तो आंखों पर कुप्रभाव पड़ेगा। इसलिए यह विधान किया गया है। इससे दृष्टि धीरे-धीरे स्थिर होती जाती है और आंखों पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता।

भगवान् वेदव्यास ने करोपलब्धि को मानव के लिए परम लाभप्रद माना है। करों (हाथ की हथेलियों) के दर्शन का दूसरा पहलू यह भी है कि करतल में हम देव दर्शन करें, ताकि हमारी वृत्तियां भगवत् चिंतन की ओर प्रवृत्त हों। इससे शुद्ध, सात्विक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है, साथ ही पराश्रित न रहकर विचारपूर्वक अपने परिश्रम से जीविका कमाने की भावना भी पैदा होती है। सभी कार्यों के मूल में भगवद् कृपा स्वीकारी जाए, यही इस धारणा का उद्देश्य है।

131. सुबह जगते ही भूमिवंदना क्यों?

प्रातः काल बिस्तर से उतरने के पहले यानी पृथ्वी पर पैर रखने से पूर्व पृथ्वी माता का अभिवादन करना चाहिए, क्योंकि हमारे पूर्वजों ने इसका विधान बनाकर इसे धार्मिक रूप इसलिए दिया, ताकि हम धरती माता के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर सकें। वेदों ने पृथ्वी को मां कहकर वंदना की है। चूंकि हमारा शरीर भूमि तत्त्वों से बना है और भूमि पर पैदा अन्न हमने खाया है, जल पिया है, औषधियां पाईं हैं। इसलिए हम इसके ऋणी हैं। उस पर पैर रखने की विवशता के लिए उससे क्षमा मांगते हुए प्रार्थना करनी चाहिए—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥ —*विश्वामित्र स्मृति 1/44-45*

अर्थात् समुद्ररूपी वस्त्र धारण करने वाली अर्थात् चराचर प्राणी रूप अपनी संतानों के पोषण हेतु जीवनदायिनी नदियोंरूपी दुग्ध-धाराओं को जन्म देने वाली। पर्वतरूपी स्तनों वाली, हे विष्णु पत्नी भूमाता! अपने ऊपर पैर रखने के लिए मुझे क्षमा करें।

इस तरह पृथ्वी का वंदन करना अपनी मातृभूमि का सम्मान करना भी है।

वैज्ञानिक मतानुसार जब हम पलंग पर चादर या कंबल ओढ़कर सोते हैं, तो हमारे शरीर की गर्मी ढके हुए पैरों में बढ़ जाती है। ऐसे में तुरंत बिस्तर से उतरकर पृथ्वी पर पैर नहीं रखना चाहिए, क्योंकि हमारे शरीर में पैरों के माध्यम से सर्दी-गर्मी का प्रवेश शीघ्र ही हो जाता है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। अतः प्रातः भूमिवंदन करने से कुछ समय कंबल हटा देने के कारण पैरों का तापमान सामान्य हो जाता है। प्रार्थना में यही वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है।

132. अतिथि को देवता मानने की प्रथा क्यों?

वेद वाक्य *अतिथिदेवो भव* का अर्थ है–अतिथि देवस्वरूप होता है। उसकी सेवा देव पूजा कहलाती है। सूतजी के अनुसार अतिथि सत्कार से बढ़कर दूसरा कोई महान धर्म नहीं है, अतिथि से महान कोई देवता नहीं है। द्वार पर आए अतिथि का यथा-योग्य स्वागत-सत्कार करना हमारी परंपरा में कर्तव्य ही नहीं धर्म माना गया है। भारतीय संस्कृति में अतिथि सत्कार को 'अतिथि यज्ञ' कहा गया है। इसे संपन्न करना प्रत्येक गृहस्थ के दैनिक जीवन का अंग माना गया है और इसकी गणना पंचमहायज्ञों में की जाती है। इस सत्कार में अतिथि का वर्ण, आश्रम, अवस्था, योग्यता नहीं देखनी चाहिए बल्कि उसे तो आराध्य ही समझना चाहिए। संसार के किसी भी देश की संस्कृति में अतिथि सम्मान की ऐसी भावना एवं सभ्यता देखने को नहीं मिलती।

अतिथि के लक्षण बतलाते हुए **महर्षि शातातप** (लघुशाता. 55) कहते हैं कि–जो बिना किसी प्रयोजन के, बिना बुलाए, किसी भी समय, किसी भी स्थान से घर में उपस्थित हो जाए, उसे अतिथि रूपी देवता समझना चाहिए। जिसके आगमन की पूर्व जानकारी हो, वह अतिथि नहीं कहलाता।

महाभारत में महात्मा विदुर धृतराष्ट्र से कहते हैं–

पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः॥ *–महाभारत उद्योग पर्व 38/2*

अर्थात् राजन! धीर पुरुष को चाहिए कि जब कोई सज्जन अतिथि के रूप में घर आए, तो पहले आसन देकर एवं जल लाकर उसके चरण पखारें (धोएं), फिर उसकी कुशल क्षेम पूछकर अपनी स्थिति बताएं, तदुपरांत आवश्यकता समझकर उसे भोजन कराएं।

वेद में कहा गया है–

जग्धपाप्मा यस्यान्न मश्नन्ति। *–अथर्ववेद 9/6/1*

अर्थात् अतिथि सत्कार करने वाले के पाप धुल जाते हैं।

यद्वा अतिथि पतिरतिथोन् प्रतिपश्यति देवयजनंपेक्षते। *–अथर्ववेद 9/6(1)/3*

अर्थात् द्वार पर आए हुए मेहमान (अतिथि) का स्वागत करना देवताओं को आहुतियां देने के समान है।

महाभारत के वनपर्व 200/23-24 में कहा गया है कि–जो व्यक्ति अतिथि को चरण धोने के लिए जल, पैर की मालिश के लिए तेल, प्रकाश हेतु दीपक, भोजन के लिए अन्न और रहने के लिए स्थान देते हैं, वे कभी यमद्वार नहीं देखते यानी यमराज के यहां नहीं जाते।

शास्त्रकारों ने कहा है कि अतिथि को आसन देने से ब्रह्माजी प्रसन्न होते हैं। अर्घ्यदान करने (हाथ धुलाने) से शिवजी संतुष्ट होते हैं। पाद्य देने (पैर धुलाने) से इंद्रादि देवता प्रसन्न होते हैं। भोजन कराने

से भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं। इस प्रकार अतिथि संपूर्ण देवताओं का स्वरूप होता है। अतः उसका सदैव स्वागत करना चाहिए।

मनुस्मृति 3/106 में कहा गया है कि गृहस्थ स्वयं जैसा भोजन करे वैसा ही अतिथि को भी दे। अतिथि का सत्कार करना सौभाग्य, यश, आयु और सुख को देने और बढ़ाने वाला है।

महाभारत में अतिथि सत्कार के अनेक वृत्तांत देखे जा सकते हैं। मोरध्वज द्वारा अपना पुत्र देना, भूखे बहेलिए के लिए कबूतर-कबूतरी का अपना शरीर दे देना, महारानी कुंती का ब्राह्मण कुमार के बदले अपने पुत्र भीम को राक्षस का आहार बनने के लिए भेजना, दुर्भिक्ष पीड़ित समय में अनेक दिनों से भूखे ब्राह्मण परिवार का अपनी थाली की रोटियां चांडाल को देना, राजा शिवि द्वारा कबूतर की रक्षा के लिए अपना मांस काट-काट कर देना आदि उदाहरण अतिथि सम्मान के उच्च आदर्श को दर्शाते हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् की भृगुवल्ली तो आतिथ्य सत्कार को व्रत की संज्ञा देती है। रामायण में भगवान् श्रीराम उस कबूतर का उदाहरण देते हैं, जिसने व्याघ्र का यथोचित आतिथ्य करते हुए अपने मांस का भोजन कराया था।

महाभारत के शांति पर्व में अतिथि सत्कार न करने के दुष्परिणाम इस प्रकार बताए हैं–

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥ *–महाभारत शांतिपर्व 191/12*

अर्थात् जिस गृहस्थ के घर से अतिथि भूखा, प्यासा, निराश होकर वापस लौट जाता है, उस गृहस्थी की कुटुंब संस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। गृहस्थ महादुखी हो जाता है, क्योंकि अपना पाप उसे देकर उसका संचित 'पुण्य' वह निराश अतिथि खींच ले जाता है। अतः सभी को आतिथ्य धर्म का पालन कर अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिए।

वेद में भी अतिथि सत्कार न करने के संबंध में लिखा है–

इष्टं च वा एष पूर्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोउतिये रश्नाति।
एष वा अतिथिर्यच्छो त्रिय स्तस्मात् पूर्वो नाश्नीयात्॥

–अथर्ववेद 9/6/3

अर्थात् जो मनुष्य अतिथि से पहले खाता है, वह घरों का इष्ट सुख और पूर्ण मनोरथ खाता है। यानी नाश करता है। अतिथि श्रोत्रिय, वेद विज्ञान होता है, इसलिए अतिथि के पूर्व भोजन मत करो।

133. सुहागिन स्त्री के लिए मंगलसूत्र का महत्त्व क्यों?

विवाहित स्त्रियां अन्य आभूषण पहनें या न पहनें, लेकिन उनके गले में धारण किया मंगलसूत्र सौभाग्यवती रहते कभी अलग नहीं होता, क्योंकि हिंदू धार्मिक मान्यता के अनुसार विवाहित नारी के सुहाग और अस्मिता से जुड़ा मंगलसूत्र एक ऐसी अमूल्य निधि है, जिसका स्थान न तो कोई अन्य आभूषण ले सकता है और न उसका मूल्य ही आंका जा सकता है। इसे सुहाग के प्रतीक के रूप में स्त्रियां धारण करती हैं और पति के देहांत के बाद ही इसे उतारकर पति को अर्पित कर देती हैं।

आम रिवाज यह है कि विवाह के अवसर पर वधू के गले में वर मंगलसूत्र पहनाता है। अनेक दक्षिण राज्यों में तो विवाह की रस्म तब तक अधूरी ही मानी जाती है, जब तक कि वर अपने हाथों से वधू को मंगलसूत्र न पहना दे, फिर भले ही 7 फेरे भी पूरे क्यों न कर लिए हों।

मंगलसूत्र में काले रंग के मोतियों की लड़ियां, मोर एवं लॉकेट की उपस्थिति अनिवार्य मानी गई है। इसके पीछे मान्यता यह है कि लॉकेट अमंगल की संभावनाओं से स्त्री के सुहाग की रक्षा करता है, तो मोर पति के प्रति श्रद्धा और प्रेम का प्रतीक है और काले रंग के मोती बुरी नजर से बचाते हैं तथा शारीरिक ऊर्जा का क्षय होने से रोकते है। चांदी और सोने से बने मंगलसूत्र काफी प्रचलित हैं, लेकिन अधिकांश महिलाएं सोने के मंगलसूत्र पहनना पसंद करती हैं, सोना शरीर में बल और ओज बढ़ाने वाली धातु है तथा समृद्धि की प्रतीक है।

मंगलसूत्र के संबंध में धार्मिक मान्यता है कि इसे एक बार पहनने के बाद सुहाग रहने तक उतारा नहीं जाता। ग्रामीण, सामान्य परिवारों की कम पढ़ी-लिखी महिलाएं मंगलसूत्र के खोने या टूटने को भावी अमंगल की आशंका मानती हैं, जबकि पढ़ी-लिखी महिलाएं ऐसा नहीं मानतीं। वे तो रात में इसे उतारकर भी रख देती हैं।